• डॉ. कामिल बुल्के विशेषाक •

हिन्दी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा, कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna • Quarterly Magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada
वर्ष 11, अक 43, जुलाई 2009 • Year 11, Issue 43, July 2009

जितना आप सोच सकते हैं उससे कम में अपने अपने देश के साथ जुड़ें

Bell TV के साथ , केबल से 55% से भी अधिक कम कीमत पर[1], अपने देश से भी अधिक क्रिकेट देखने को अपना लक्ष्य बना सकते हैं। इस मौसम, खेल में शामिल हो जाओ।

दक्षिण एशियाई कोम्बो

ATN SONY Entertainment Television

$10/MO.[2] 12 महीने के लिए

Bell TV बल्ले बाजी करने जा रहा है बड़ी विशेषताओं के साथ जैसे
. 500 से अधिक डिजिटल चैनल चुनाव के लिए अधिकाँश HD में मिलाकर
. उत्कृष्ट पिक्चर क्वालिटी नियमित केबल से 10 गुणा बेहतर
. शामिल करें चिन्ता मुक्त पूरा होम सेटप[3]

ICT North: 1 888 735-9777

Bell TV देखना अब हुआ बेहतर

Offer ends Feb. 28, 2009. Available where access and line of sight permit. Digital service fee ($3/mo. per account) extra. Upon early termination, price ajustment charges apply. Subject to change without notice. Taxes extra. Other conditions apply. (1) As of Dec. 12, 2008. Compared to Rogers' South Asian combo billed $24.95/mo. (2) With new account on a min. 2-yr. contract and subscription to South Asian combo at time of activation. Regular rates apply at the end of the promotional period. (3) Details at bell.ca/installationincluded.

■ इस अंक में...

३ सन्देश
८ पाती
११ सम्पादकीय
४७ चित्र काव्य शाला
३५ विलोम चित्र– अरविंद नराले
५२ हिन्दी समाचार

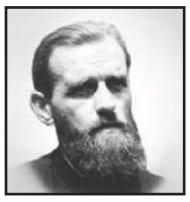

डॉ. बुल्के

आयाम

१२ डॉ. कामिल बुल्के : जीवन रेखाएँ
डॉ. दिनेश्वर प्रसाद
२० एक पत्र – डॉ. शमशेर बहादुर सिंह
२१ बीसवीं शताब्दी का ऋषि
डॉ. पूर्णिमा केडिया
२३ मनुष्य मात्र की एकता – डॉ. कामिल बुल्के
२४ मानस– मानस में जिनके राम
डॉ. श्रीनाथ द्विवेदी
२५ ग़ज़ेले की कुछ कवितायें अनुवादक
डॉ. दिनेश्वर प्रसाद
२९ एक महान हिन्दी प्रेमी–
प्रो. हरि शंकर आदेश
३१ राम कथा मेरे शोध का विषय क्यों?
डॉ. बुल्के
३३ एक ईसाई की आस्था, हिन्दी प्रेम और
तुलसी भक्ति : डॉ. कामिल बुल्के
३६ एक पाठक की पाती
धर्मपाल महेन्द्र जैन
३७ हिन्दी के प्रति हिन्दी भाषियों का कर्त्तव्य
डॉ. कामिल बुल्के
४० भारतीय साहित्य और हिन्दी– डॉ बुल्के
४३ आधुनिक युग के तुलसीदास, फादर बुल्के
आत्माराम शर्मा
४९ फादर कामिल बुल्के के रामकथा सम्बन्धी शोध
डॉ. मृदुला प्रसाद
५१ कामिल बुल्के प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन
नागपुर में – प्यारे लाल शुक्ल
६० फादर कामिल बुल्के (कविता)
अमित कुमार सिंह

"हिन्दी चेतना" सभी लेखकों का स्वागत करती है कि आप अपनी रचनायें प्रकाशन हेतु हमें भेजें। सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि " हिन्दी चेतना" साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात् साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन। एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन होना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक पढ़ने का आनन्द प्राप्त कर सकें। इसीलिए हम सभी लेखकों को आमन्त्रित करते हैं कि हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें। अगले अंक के लिए अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें। अगर संभव हो तो अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें।

रचनाएँ भेजते हुये निम्न लिखित नियमों का ध्यान रखें:

१ हिन्दी चेतना, अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर, तथा जनवरी में प्रकाशित होगी।
२ प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
३ पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर लिखित रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जायेंगी।
४ रचना के स्वीकार व अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा।
५ प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जायेगा।
६ पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

हिन्दी चेतना वर्ष २००९

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
श्री श्याम त्रिपाठी

सह संपादक
डॉ. निर्मला आदेश (कैनेडा)
डॉ. सुधा ओम ढींगरा (अमेरिका)

संपादकीय मंडल
अमितकुमार सिंह (भारत)
अभिनव शुक्ल (अमेरिका)
गजेन्द्र सोलंकी (भारत)
इला प्रसाद (अमेरिका)

प्रबंध संपादक
डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा (कैनेडा)
डॉ. ओम ढींगरा (अमेरिका)

मार्ग दर्शक मंडल
डॉ कमल किशोर गोयनका (भारत)
राज महेश्वरी (कैनेडा)
सरोज सोनी (केनेडा)
उदित तिवारी (भारत)
विनोद चन्द्र पाण्डेय (भारत)

प्रमुख : विदेश
डॉ.अंजना संधीर (भारत)
अनिल शर्मा (थाइलैंड)
सुरेशचन्द्र शुक्ला (नार्वे)
यासमीन त्रिपाठी (फ्रांस)
राजेश डागा((ओमान)

हिन्दी प्रचारिणी सभा
महाकवि प्रो. आदेश (संरक्षक)
श्याम त्रिपाठी (अध्यक्ष)
भगवत शरण श्रीवास्तव (उपाध्यक्ष)
सुरेन्द्र पाठक (मंत्री)
डॉ. चन्द्र शेखर त्रिपाठी (उपमंत्री)
श्रीमती सुरेखा त्रिपाठी (कोषाध्यक्ष)
शालीन चन्द्र त्रिपाठी (सदस्य)
सुरभि गोबर्धन (सदस्य)

चेतना सहायक
डैनी कावल
अंकुर टेकसाली
अजय मनोचा

एक विदेशी संत ने कर दिया
हिन्दी जगत में चमत्कार,
विशेषांक में
देखिये उसका समाचार।

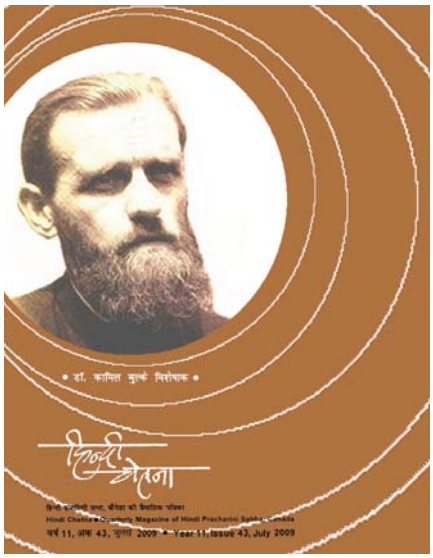

अरविंद नराले

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. Shiam Tripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought many local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

Hindi Chetna
6 Larksmere Court,
Markham, Ontario,
L3R 3R1
Phone(905) 475 - 7165
Fax: (905) 475 - 8667
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

मुझे यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आप त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दी चेतना' का जुलाई अंक विशेष तौर पर डॉ. कामिल बुल्के जैसे विशिष्ट व्यक्ति को समर्पित कर रहे हैं। डॉ. कामिल बुल्के का हिन्दी भाषा व हिन्दी साहित्य के प्रचार एवं प्रसार में सराहनीय और अमूल्य योगदान रहा है जो कि विदेशों में कम ही देखने को मिलता है। उनकी रचनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति उनका हिन्दी भाषा का ज्ञान दर्शाती है। जो कि भारतीय मूल के लोगों को प्रोत्साहित करती है कि वो अपने देश, अपनी विरासत और अपनी भाषा को जिसे वे पीछे छोड़ आये हैं कभी न भूलें।

मेरा यह मानना है कि 'हिन्दी चेतना' के माध्यम से यह संदेश उत्तरी अमेरिका में बसने वाले लोगों का मार्गदर्शन करेगा व उत्साह दिलायेगा कि वो भी हिन्दी भाषा का ज्ञान अपने युवा वर्ग को दें।
अनेक – अनेक शुभकामनाओं के साथ,

प्रीति सरन (कौंसिलेट जनरल टोरंटो)

Publishers of:
PUNJAB KESARI
(Jalandhar, Ludhiana, Palampur, Ambala, Panipat, Hisar & Jammu)
HIND SAMACHAR
(Jalandhar, Ambala & Jammu)
JAG BANI
(Jalandhar & Ludhiana)

PUNJAB KESARI GROUP

CIVIL LINES, JALANDHAR-144 001 (INDIA)
PHONES: 2280104, 2280105, 2280106
FAX: (91)-(181) 2280111(4 Lines)
e.mail: punjabkesari@vsnl.com
punjabkesari@vsnl.net

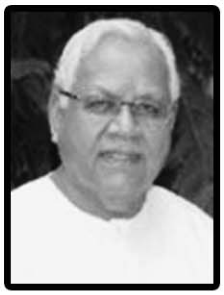

July 08, 2009

संदेश

हमें यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि भारत से बाहर बैठे आप हिन्दी प्रेमियों ने अपनी भाषा और संस्कृति को विस्मृत नहीं किया है वरन 'हिन्दी चेतना' के माध्यम से उसे जन-जन तक फैला रहे हैं एवं फादर कामिल बुल्के विशेषांक इस प्रयत्न की अगली कड़ी है । फादर कामिल बुल्के हिन्दी के सच्चे हिमायती और हिन्दी साहित्य के विशिष्ट साधक थे । बैल्जियम से आकर उन्होंने भारत और भारतीय भाषा हिन्दी को जिस तरह अपनाया, वह अपने आप में एक अनुकरणीय उदाहरण है । ऐसे साहित्य सेवी को उसकी जन्मशती पर याद कर और उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को 'हिन्दी चेतना' के माध्यम से सर्व जन सुलभ करा कर आपने सराहनीय कार्य किया है । हमारी शुभकामनाएं स्वीकार करें ।

(विजय कुमार चोपड़ा)
सम्पादक

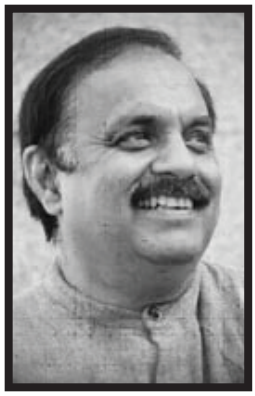

आदरणीय सुधा जी

हमें यह जान कर अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है कि हिन्दी चेतना का विशेषांक फ़ादर कामिल बुल्के के जीवन एवं कामों पर आधारित होगा।
बेल्जियम मूल के फ़ादर बुल्के ने 41 वर्ष की आयु में भारतीय नागरिकता ग्रहण की। उनका सबसे महत्त्वपूर्ण काम अंग्रेज़ी से हिन्दी शब्दकोश की रचना कहा जाएगा। आज भी उनके द्वारा रचा गया शब्दकोश हिन्दी जगत में सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है। एक ओर उन्होंने रामकथा की उत्पत्ति और विकास पर ग्रन्थ लिखा तो दूसरी ओर बाइबल का हिन्दी रूपांतर भी किया।
वे सही मायने में विश्व नागरिक थे। एक विदेशी होने के बावजूद फ़ादर बुल्के ने हिन्दी की सम्मान वृद्धि, इसके विकास,प्रचार-प्रसार और शोध के लिये गहन कार्य कर हिन्दी के उत्थान का जो मार्ग प्रशस्त किया, और हिन्दी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने की जो कोशिशें कीं, वह हम भारतीयों के लिये प्रेरणा का विषय है। कथा यू.के. के सभी पदाधिकारी एवं सदस्य आप सबके प्रयासों की प्रशंसा करते हैं और आशा करते हैं कि फ़ादर कामिल बुल्के विशेषांक अपने आप में अनूठा साबित होगा।
शुभाकांक्षी,
तेजेन्द्र शर्मा
महासचिव

केदार नाथ साहनी
Kidar Nath Sahani

दिनांक : 28 मई, 2009

प्रिय श्री त्रिपाठी जी,

सप्रेम नमस्कार।

कृपया मेरा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार करें। 'चेतना' का अंक कल ही मिला और बहुत अच्छा लगा।

भारत से हजारों मील दूर बैठे राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए आप जो कार्य सत करते रहते हैं, उसी का सुखद परिणाम है कि इतने सुन्दर, सूचनापरक और अच्छे साहित्यिक स्तर की सामग्री से यह अंक भरा है। छपाई भी बहुत सुन्दर और आकर्षक है। राष्ट्रभाषा की जो छवि हर भारतवंशी के मन पर अंकित होनी चाहिए, वह आपकी पत्रिका कर रही है।

यहां बैठा आपके इस स्तुत्य रचनात्मक कार्य के लिए साधुवाद और शुभकामनाएं व्यक्त करने के अतिरिक्त कर भी क्या सकता हूं!

हार्दिक मंगलकामनाओं के साथ,

भवदीय

(केदार नाथ साहनी)

सम्माननीय श्री श्याम त्रिपाठी जी एवं डॉ. सुधा ओम ढींगरा,

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि 'हिन्दीचेतना' त्रैमासिक पत्रिका का डॉ. कामिल बुल्के अंक प्रकाशित हो रहा है। हिन्दी के विदेशी विद्वानों में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। डॉ. कामिल बुल्के का जन्म 1909 में बेल्जियम के रैम्सचैपल में हुआ था । वे मिशनरी कार्य के लिए भारत आये थे और बाद में वे भारत के ही नागरिक बन गये। वे हिन्दी के विद्वान थे और उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध होकर अपना शोध - प्रबन्ध, राम -कथा : उत्पत्ति और विकास , (1950 ई.) प्रस्तुत किया। डॉ. कामिल बुल्के ने हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये , जिनमें उनका , अंग्रेजी - हिन्दी शब्द -कोश , (1968) आज तक सबसे प्रामाणिक शब्द- कोश माना जाता है। डॉ. बुल्के अनेक वर्षों तक राँची के 'संत ज़ेवियर्स कॉलेज में' हिन्दी तथा संस्कृत विभाग के अध्यक्ष रहे और अध्यापक के रूप में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की। उनकी जन्म -शताब्दी (1909 - 2009) पर मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ और मैं मानता हूँ कि वे हिन्दी साहित्य के इतिहास में सदैव स्मरण किये जायेंगे।

विनीत,
डॉ. कमल किशोर गोयनका

■ पाती

सुधा जी ,
"हिन्दी चेतना" का अप्रैल अंक मिला। मैं कहूँगा कि यह पत्रिका रचनाओं के स्तर पर भारत की किसी भी पत्रिका से उन्नीस नहीं है। मानवीय कमज़ोरियों का शिकार मैं भी हूँ। इसलिये सबसे पहले वो नाम पढ़े जिन से परिचित हूँ। सुभाष नीरव का साक्षात्कार, प्रेम जनमेजय का व्यंग्य, रूपसिंह चन्देल का संस्मरण, महावीर शर्मा एवं सतपाल की ग़ज़लें, लावण्या जी का जन्म -जन्म के फेरे, प्रो. हरिशंकर आदेश, गुरूदेव कमल किशोर गोयनका (वे हमारे लेक्चरर थे ज़ाकिर हुसेन कॉलेज में), सूरज प्रकाश एवं सुभाष नीरव का पत्र सभी फटाफट पढ़ गया। यह रचनाएँ किसी भी पत्रिका को स्तरीय बना सकती हैं। दिव्या माथुर की कहानी अंतिम तीन दिन मेरी सर्वप्रिय कहानियों में शामिल है। साहित्यिक समाचार भी पढ़े। आपने लिखा है कि अगला अंक फिर एक विशेषांक है। प्रतीक्षा रहेगी। आपको और आदरणीय त्रिपाठी जी को एक ख़ूबसूरत अंक के लिये बधाई।
आपका ,
तेजेन्द्र शर्मा (यू.के.)

.....

आप लोग बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। मातृभूमि से इतनी दूर रहते हुये भी आपका हिन्दी के प्रति यह लगाव काबिले तारीफ है। बधाई स्वीकार करें।
डॉ. गोविन्द सिंह, इक्ज़ेकूटिव संपादक , अमर उजाला
दिल्ली (भारत)

.....

बहुत अच्छा लगा। सब पढ़ा।
जगबीर सिंह तोमर (भारत)

.....

सुधा जी अभिवादन,
"हिन्दी चेतना"का यह सुखद अंक 30 को ही मिला और इ तना अच्छा लगा कि करीब -करीब पूरा पढ़ गयी। अति सुन्दर । अन्जना जी की रचना का इन्तज़ार रहेगा। चित्र काव्यशाला हमेशा की तरह अनूठी ! क्या कहूँ - कितना कहूँ! लेख , कहानी , कवितायें सब एक से बढ़कर एक। अपनी कविता " यह मशाल" भी देखी । आपने मुझे इस योग्य समझा ; शत - शत धन्यवाद। दिव्या मथुर की " अंतिम तीन दिन" यहाँ के जीवन की मानव मन की यथार्थ झाँकी है। अरविंद नराले जी की सज्जा से सजा कलेवर दिन- दिन निखरता जा रहा है।
सादर,
रेणुका भटनागर (अमेरिका)

.....

आदरणीय सुधा जी, नमस्ते
पहली बार आप की मेल से हिन्दी - चेतना के विषय में जाना । आपका ई- अंक पढ़ा । वाह.... हर विधा में परिपूर्ण चयनित सामग्री देख कर चकित हूँ। इसका छपा अंक भिजवाने की व्यवस्था मेरे पते पर हो जाये तो बड़ा अच्छा हो। रचनात्मक सहयोग के रूप में शीघ्र ही कुछ रचनायें भेज रहा हूँ।
शेष शुभ
पुन: बधाई एवं शुभ कामनाएँ।
योगेन्द्र मोदगिल (पानीपत) भारत

.....

सुधा जी,
आपका बहुत- बहुत धन्यवाद। बहुत अच्छी पत्रिका सुन्दर साहित्य के साथ।
सादर
रचना श्रीवास्तव (अमेरिका)

.....

ऑन लाइन पर चेतना का पदार्पण हिन्दी जगत की जागरूकता में नये उत्साह का संचरण करेगा। आदरणीय त्रिपाठी जी को शतश: शुभकामनायें।
संदीप त्यागी (कैनेडा)

.....

प्रिय संपादक,
सात समुन्दर पार हो रहे इस तरह के सद्प्रयास उम्मीद जगाते हैं और उत्साह पैदा करते हैं । क्योंकि हम हिंदी पट्टी की - उदासी से अक्सर हताश हुये रहते हैं । आप लोग एक तरह से इतिहास रच रहे हैं। बधाई ।
अनूप सेठी (भारत)

.....

अति सुन्दर! इस श्रेय के आप अधिकारी हैं कि यह पत्रिका उत्तरी अमेरिका के लेखकों का प्रतिनिधित्व करने में सफल हो रही है। पुन: धन्यवाद ।
सत्यपाल आनन्द(अमेरिका)

.....

क्या बात है! आप लोग इतनी दूर बैठे भी कितना सार्थक काम कर रहे हैं। मेरा सहयोग हमेशा मिलेगा।
डॉ. ओम अवस्थी (भारत)

आज पहली बार "हिन्दी चेतना" को देखा। अपने आप में अदभुत कार्य कर रहे हैं आप लोग। सामग्री की विविधता और स्तर इसे एक सम्पूर्ण पत्रिका का स्वरूप प्रदान करते हैं। सुभाष नीरव से डॉ. ढींगरा का साक्षात्कार संक्षिप्त लेकिन विचारपूर्ण है और उस पर चंदेल भाई का कमलेश्वर जी पर संस्मरण , प्रशंसनीय है। पत्रिका में अपनी रचना भेजकर मुझे खुशी होगी।
रमेश कपूर (भारत)

.....

सुधा जी,
हमेशा की तरह कहूँगा, बहुत समृद्ध अंक है। सतपाल ख्याल की ग़ज़ल और दिव्या माथुर की कहानी पढ़ गया । रूपसिंह चंदेल के संस्मरण को पढ़ते हुये कमलेश्वर याद आते रहे। आपको बधाई और शुभकामना। क्या "हिन्दी चेतना" की पीडीएफ के बजाय स्वतंत्र रूप से किसी ब्लाग पर या साइट पर प्रकाशित नहीं किया जा सकता ? इस पर विचार करना चाहिये।
सादर
आलोक प्रकाश पुतुल (भारत)
raviwar.com

.....

आदरणीय सुधा जी,
'हिन्दी चेतना' का अंक 42 प्राप्त हुआ, आभार। बहुत खूबसूरत है अंक। सुदूर बैठकर आप लोग इतनी सुन्दर पत्रिका प्रकाशित कर पा रहे हैं। यह बहुत महत्वपूर्ण है। इससे पहले इसे नेट पर देख चुका था , लेकिन तब पूरा पढ़ नहीं पाया था। आपकी भेजी प्रति कल प्राप्त हुई शाम और आज आद्यन्त उसे पढ़ गया । दिव्या माथुर की कहानी - 'अंतिम तीन दिन' अंक की श्रेष्ठतम प्रस्तुति है। लावण्या शाह की कहानी - 'जन्म - जन्म के फेरे' यथार्थपरक और मार्मिक है । वरिष्ठ कथाकार सुभाष नीरव के साथ आपकी बातचीत अनेकों पर्तों को खोलती है। अन्य रचनाओं में डॉ. शिवनन्दन यादव की कविता और प्रेम जनमेजय का व्यंग्य पसंद आये हैं।कुछ विनम्र सलाह पत्रिका के लिए। यदि पुस्तकों के कवर प्रकाशित न कर उनके स्थान पर पुस्तकों की प्राप्ति सूचना दी जाये तो पर्याप्त पृष्ठों को बचाया जा सकता है और उस स्थान का उपयोग किसी रचना के प्रकाशन के लिए किया जा सकता है। कवर के स्थान पर सूचना में पुस्तक ,लेखक और प्रकाशक का नाम देना ही पर्याप्त होगा। इस अंक में कुछ पुस्तकों के इतने बड़े कवर प्रकाशित हैं कि उनके स्थान पर लघुकथा या एक अच्छी कविता प्रकाशित की जा सकती थी। आप सभी को इतनी सुन्दर पत्रिका प्रकाशित करने के लिए बधाई।
रूप सिंह चंदेल (भारत)

.....

सुधा जी ,
'हिन्दी चेतना' पिछले कई वर्षों से पढ़ रही हूँ। आवरण से लेकर अन्तिम पृष्ठ तक यह पत्रिका एक नई नवेली दुल्हन सी सज -धज कर सामने आती है तो समय निकाल कर पढ़ने का धैर्य नहीं रहता । कहानियाँ, लघु कथाएँ , संस्मरण , कविता , गीत, लेख , ग़ज़ल , साक्षात्कार सभी जैसे उस नई नवेली के गहने हैं जिनसे वह दिन प्रतिदिन बनती सँवरती है। आपका नए कवियों, लेखकों को लिखने के लिए प्रोत्साहित करते रहना सराहनीय है। बस पत्रिका को चार चाँद लगाए रखें। हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। लेखिका दिव्या माथुर द्वारा लिखित कहानी " अन्तिम तीन दिन" पढ़ी , मन को छू गई। 'माया' के विचारों की ऊहा पोह, आशा -निराशा के भँवर में डूबते उतरते उतार चढ़ाव का लेखिका ने बड़ी सुन्दरता से चित्रण किया है । पश्चिम के समाज में रहकर , पूर्व के मूल्यों और विचारों को अपनी थाती बनाए रखना , ऐसी स्थिति में से हम जैसे प्रथम पीढ़ी के लगभग सभी लोग गुज़र रहे हैं। सन्तान की कमियों को जानते हुये भी उनके प्रति हमारा मोह, मृत पति के प्रति और उससे दूसरे लोक में मिलने की आशा ' माया' के जीवन को चला रही है उसके जीवन के अन्तिम दिनों को व्यस्त रखे हुये हैं। कहानी का अंत लेखिका ने सुन्दरता से किया कि यदि जीवन का कोई सार्थक ध्येय हो तो मृत्यु का डर भी मन से निकल जाता है। लेखिका मेरी हार्दिक बधाई की पात्रा हैं ।
उषा देव (अमेरिका)

.....

सम्मानीय प्रमुख संपादक महोदय,
हिन्दी चेतना की सह- सम्पादक डॉ. सुधा ढींगरा ने साक्षात भेंट होने पर मुझे पीत्रिका के पिछले तीन अंक - अक्टूबर 08, जनवरी 09, अप्रेल2009 - भेंट किए। मैंने पत्रिका पहली बार देखी और यह भी कैरी, नार्थ कैरोलाइना में जहाँ मेरी बड़ी बेटी भी रहती है । मैं उत्सुकता और आलोचनात्मक मानसिकता के साथ पत्रिका के तीनों अंक पढ़ गया। यह जानने के लिए कि प्रवासी भारतीय हिन्दी की साहित्यिक संस्कृति और भाषा प्रयोग कौशल की दृष्टि से मुख्य भूमि के स्तर के कितने निकट है । मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि दोनों दृष्टियों से मुझे पत्रिका का वही स्तर लगा जो इस स्तर की पत्रिकाओं का भारत में होता है। इसके अतिरिक्त भारतवासी लेखक भी पत्रिका से लेखक रूप में जुड़े हैं । जो एक बृहत्तर सांस्कृतिक भारत को मूर्त रूप प्रदान करता है। मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ।
सुरेश कुमार
(पूर्व प्रोफेसर, केन्द्रीय संस्थान, आगरा) भारत

प्रिय श्याम त्रिपाठी,
आज ट्रेन में भी श्री अविनाश गुप्त के सौजन्य से आपकी पत्रिका 'हिन्दी चेतना' देखने को मिली। आपको कोटि - कोटि साधुवाद, इस हिन्दी सेवा हेतु। आप विदेश में हिन्दी की अलख जगाये हैं।
उदय प्रताप सिंह
पूर्व सांसद

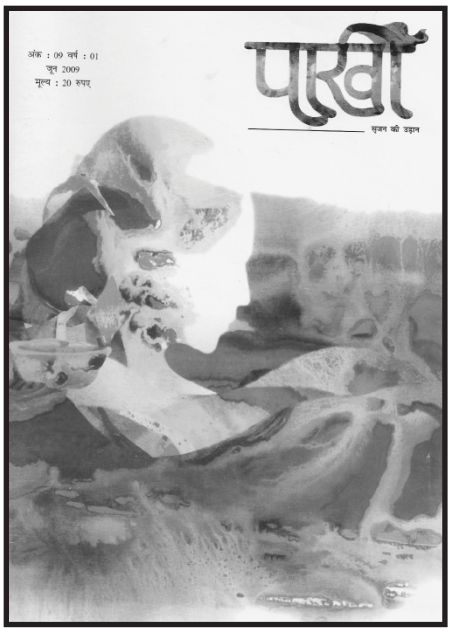

दो शब्द

फादर कामिल बुल्के स्मृति अंक आपके सामने है। इस अंक के लिए सामग्री जुटाते हुए, मैंने इस बात का ख्याल रक्खा कि बहुश्रुत व बहुपठित लेखों की आवृत्ति न हो और हम इसे एक ऐसे अंक का स्वरूप प्रदान कर सकें, जो फादर बुल्के के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उद्घाटित करता हो। मैं अपने इस प्रयास में कितनी सफल रही हूँ, यह जानने के लिए आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा है।
शुभकामनाओं सहित
इला प्रसाद

सम्पादक
यतेन्द्र वार्ष्णी
गर्भनाल
garbhanal@ymail.com
GARBHANAL
प्रवासी भारतीयों की मासिक ई-पत्रिका
आपको हिंदी बोलनी आती है? तो फिर हिंदी में ही बात करिये
आप कुछ लिखने चाहते हैं? तो फिर हिंदी में लिखिये
अपनी बोली-बानी में बात करने का मंच है गर्भनाल ई-पत्रिका, जो हर माह नियमित तौर पर आपके ईमेल बॉक्स में पहुँच जाती है. इसे पढ़ें और परिजनों, मित्रों को फॉरवर्ड करें.
GARBHANAL
गर्भनाल
मेरा गाँव, मेरा देश
गर्भनाल
गर्भनाल
भारत माता ग्राम-वासिनी!
गर्भनाल
पंथ होने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला
गर्भनाल के पुराने अंक उपलब्ध है.
http://hinditoolbar.googlepages.com/garbhanal

सम्पादकीय

आपको यह विशेषांक देखकर आश्चर्य अवश्य होगा और यह स्वाभाविक भी है। पिछले अंकों में इसका उल्लेख नहीं किया गया । यह अंक हिन्दी के एक विदेशी मूल के विद्वान संत फादर बुल्के को समर्पित है। जब हमने यह निश्चय किया कि हम फादर बुल्के पर विशेषांक निकालेंगे, तो मैंने महसूस किया कि फादर बुल्के के सम्मान में यह अंक विश्व के लिए एक अदभुत उपहार होगा, विशेषकर उन हिन्दी साहित्यकारों के लिए जो भारत से सुदूर विदेशों की धरती पर बसे हुये हैं । एक ओर बुल्के जैसे कर्मठ, मेधावी हिन्दी के संत जिन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। दूसरी ओर लार्ड मैकाले जैसे क्रूर, हिन्दी भाषा , साहित्य और संस्कृति के शत्रु जिन्होंने हमारे साहित्य और संस्कृति की जड़ों में ऐसा तेजाब डाल दिया कि हम अब तक खड़े नहीं हो पाये हैं। किन्तु जिस साहित्यिक विभूति की स्मृति में हमने यह अंक समर्पित किया है वह तो सागर में एक बूँद के समान ही है। फिर भी हमने इस दिशा में कार्य किया।

यदि हम बुल्के की हिन्दी सेवाओं पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो हमें ज्ञात होगा कि बुल्के हिन्दी के लिए जिये और हिन्दी के लिए काम करते -करते अपनी जीवन यात्रा समाप्त करके हिन्दी जगत पर एक बहुत बड़ा ऋण छोड़ गये हैं। उनके प्रयासों को देखकर मेरा अन्तस्थ छू जाता है। वर्तमान को इतिहास की सच्चाई बताने के लिए ही हमने यह पग उठाया है।

दरअसल एक विदेशी होने के बावजूद बुल्के ने हिन्दी के उत्थान , प्रचार - प्रसार एवं शोध के लिए जो गहन कार्य कर हिन्दी का जो मार्ग प्रशस्त किया, और हिन्दी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने की जो कोशिशें कीं, वह हम भारतीयों के लिए प्रेरणा का विषय है और लज्जा का भी । लज्जा इसलिए क्योंकि एक विदेशी होने के बावजूद हिन्दी के लिए उन्होंने जो किया, वो हम भारतीय और हिन्दी भाषी होकर भी उसका एक अंश भी कर पाये ? आज हिन्दी की सेवा के लिए फादर बुल्के जैसे कर्मठ , समर्पित व्यक्तियों की आवश्यकता है।

फादर बुल्के विशेषांक की मुख्य परामर्शदाता डॉ. इलाप्रसाद हैं। मैं इला प्रसाद को बहुत – बहुत बधाई देता हूँ जिन्होंने इस अंक के लिए फादर बुल्के पर अनमोल सामग्री एकत्रित करने में संपादक मंडल को सहयोग दिया। गतवर्ष मेरी सहायक सुधा ओम ढींगरा ने डॉ. नरेन्द्र कोहली अंक निकला था। अगले वर्ष के नये विशेषांक की तैय्यारी चल रही है। मैं सभी लेखकों का अनुगृहीत हूँ जिन्होंने अपनी लेखनी से इस विशेषांक की शोभा बढ़ाई। आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी। -

आपका

प्रमुख संपादक

हिन्दी चेतना की समीक्षा अवश्य देखें 'कथा चक्र'
http:// Katha Chakra. blogspot.com

ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम ही साहित्य है

हिन्दी चेतना को पढ़िये !
पता :-
http://hindi-chetna.blogspot.com/

हिन्दी चेतना को आप आन लाइन भी पढ़ सकते हैं।
Visit Our Web Site
Http://www.vibhom.com
or home page पर publication में जाकर

घर बैठे पुस्तकें प्राप्त करें
http://www.pustak.org

एक सुखद सूचना :-

अगले अंक से हम एक नई लेख माला "अहमदाबाद से अमरीका तक" प्रस्तुत कर रहे हैं। लेखिका हैं सुप्रसिद्ध कवयित्री डॉ. अंजना संधीर। इसमें वह अपने विश्वविद्यालय के शिक्षण के खट्टे -मिट्ठे अनुभवों से परिचित करायेंगी। संपादक

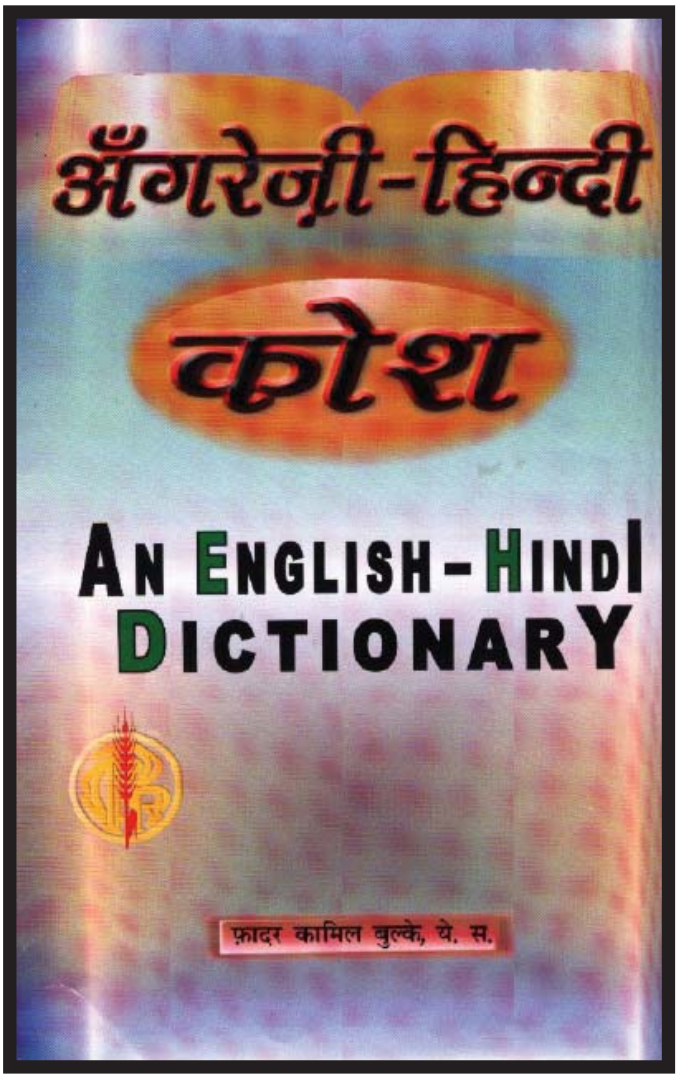

डॉ. कामिल बुल्के : जीवन-रेखाएँ

डॉ. दिनेश्वर प्रसाद

हिन्दी के धर्मयोद्धा और सन्त साहित्यकार डॉ.फ़ादर कामिल बुल्के का जन्म बेलजियम के पश्चिम फलैण्डर्स प्रान्त के रम्सकपैले नामक गाँव में 1 सितम्बर, 1909 ई. को हुआ था। वहाँ उनके पूर्वज पिछली कई पीढ़ियों से रह रहे थे और आज भी उनके कई सम्बन्धी वहाँ रहते हैं। उनके दादा फिलिप बुल्के (जन्म : 17 जनवरी, 1817 ई.) अपने पूर्वजों की तरह भू-स्वामी थे। उनकी पहली पत्नी अमेलिया शाउत की मृत्यु विवाह के कुछ ही समय बाद हो गयी थी। उनकी दूसरी पत्नी नतालिया सोफिया क्लाइस (जन्म : 15 सितम्बर, 1841ई.), जो रम्सकपैले के समीपवर्ती दसेले गाँव की थीं, उनसे चौबीस वर्ष छोटी थीं और अपने पति की मृत्यु के नौ वर्ष पूर्व ही, अक्टूबर, 1893 ई. में परलोकवासी हो गयी थीं। फिलिप बुल्के की मृत्यु पचासी वर्ष की परिपक्व अवस्था में 28 अगस्त, 1902 ई. को हुई।

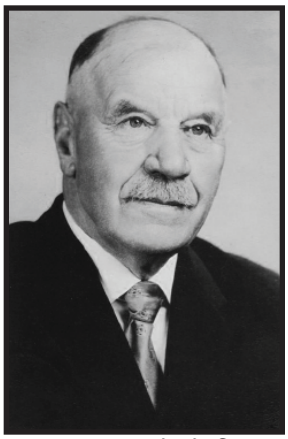

उपरोक्त चित्र में :- बुल्के के पिता अडोल्फ बुल्के एवं उनकी माँ मरिया

फिलिप बुल्के अपने पूर्वजों से भिन्न स्वभाव के थे। यद्यपि वह बहुत धर्मनिष्ठ थे, किन्तु उनका विश्वास धन जोड़ने में नहीं, बल्कि भोगने में था। उनकी फिजूलखर्ची के कारण उनकी समस्त भू-सम्पत्ति बिक गयी और जीवन के अंत में वह दिवालिया हो गये। उनके दोनों पुत्र - कामिल और अदोल्फ - उनकी मृत्यु के बाद कई वर्षों तक रम्सकपैले में आजीविका के लिए संघर्ष करते रहे। पारिवारिक प्रतिष्ठा के उतार और बढ़ते हुए आर्थिक संकट के दिनों में ही उनका विवाह हुआ तथा अदोल्फ को पहली संतान हुई, जिसे पारिवारिक परंपरा के अनुसार अपने बड़े चाचा कामिल का नाम मिला। शिशु कामिल का जन्म समय से पूर्व - सात महीनों में - हुआ था और वह इतना दुर्बल था कि उसे बचने की आशा किसी को न थी। उसकी माँ मरिया बुल्के, उसके जन्म के बाद तीन दिनों तक रोती रहीं, किन्तु चौथे दिन से उसकी स्थिति में सुधार होने लगा और उसके जीवन की आशा बँधने लगी किन्तु जब वह कुछ ही महीनों का था, बुल्के-परिवार को अपना गाँव छोड़ना पड़ा। कामिल और अदोल्फ, कठिन संघर्ष करते रहने के बावजूद, अपना पैतृक घर तक न बचा सके। दोनों

समीप के दो अलग-अलग गाँव में बस गये - हाईस्त में कामिल और लिस्सेवेगे में अदोल्फ। लिस्सेवेगे में अदोल्फ की ससुराल भी थी।

फ़ादर बुल्के के चाचा (कामिल) और उनके पिता के स्वभाव में बहुत अंतर था। चाचा इस दुनिया के आदमी थे। वह बहुत व्यवहारकुशल व्यक्ति थे। उन्होंने लकड़ी का व्यापार आरंभ किया और देखते-देखते लाखों फ्रैंक के स्वामी बन गये। लिस्सेवेगे के समीपवर्ती बंदरगाह जेब्रुगे में उनका एक विशाल गोदाम था, जहाँ तरह-तरह की लकड़ियों के ढेर सारे कुन्दे छोटे-बड़े टीलों के रूप में जमा रहते थे। गोदाम के कारखाने में लकड़ी चीरने का काम होता था। लगभग डेढ़ सौ मजदूर सवेरे से शाम तक जहाजों से लकड़ी उतारने, उसे यथास्थान रखने, गाड़ियों पर लादने और कारखाने में चीरने में व्यस्त रहते थे। यद्यपि अपने अध्यवसायी स्वभाव के कारण वह व्यापार में लगने के कुछ समय बाद ही सम्पन्न हो गये, किन्तु प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद तो उनकी गणना आसपास में सबसे धनी लोगों में होने लगी। प्रथम विश्वयुद्ध में बेलजियम के बहुत-से गिरजाघर नष्ट हो गये थे, लड़ाई समाप्त होने के बाद पुराने गिरजाघरों की मरम्मत और नये गिरजाघरों के निर्माण का काम तेजी पर था, इसलिए लकड़ी का व्यापार उत्कर्ष पर था। फ़ादर बुल्के के चाचा ने इससे बहुत धन कमाया और अपने गाँव हाइस्त में, जो जेब्रुगे से ब्रुसेल्स जाने वाले मार्ग पर है, विशाल भवन बनाया। वह उस अभिजात वर्ग में सम्मिलित हो गये जो फ्लेमिश होते हुए भी फ्रेंच बन जाता था। देखते-देखते उनके पूरे परिवार का वातावरण बदल गया और न केवल घरेलू बातचीत फ्रेंच में होने लगी, बल्कि फ्रेंच शिष्टाचार भी बरता जाने लगा।

इसके ठीक विपरीत फ़ादर बुल्के के पिता अदोल्फ थे लिस्सेवेगे आने के पश्चात् वह अपने बड़े भाई के लकड़ी कारखाने में प्रबंधक के रूप में काम करने लगे। प्रथम विश्वयुद्ध में सैनिक के रूप में कार्य करने के बाद जब वह फिर घर लौटे, तो भाई के कारखाने में पुन: प्रबन्धक के पद पर नौकरी करने लगे। उनके बड़े भाई को यह पसंद नहीं था कि वह उनके यहाँ कर्मचारी के रूप में नौकरी करें। वह उन्हें अपने व्यापार में साझेदार बनाना चाहते थे, लेकिन उनके इस दबाव का अदोल्फ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनको मालूम था कि लकड़ी के व्यापार से मिलने वाले अकूत धन का रहस्य क्या है? इसलिए वह भाई के व्यापार में साझेदार बनना नहीं चाहते थे। वह वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में ईमानदारी से काम करते रहने के निश्चय पर अडिग रहे।

उनकी पत्नी मरिया भी उनकी तरह धर्मनिष्ठ थीं। लेकिन पति-पत्नी के स्वभाव में बहुत अंतर था। अदोल्फ का स्वभाव गंभीर, ठंढा और सख्त था। उनमें धर्मनिष्ठ व्यक्ति की मानवीयता सहज ही विद्यमान थी, किन्तु वह कवित्व और भावुकता के लोक के नहीं, बल्कि व्यवहार लोक के प्राणी थे। वह शरीर से भी बहुत बलिष्ठ और लम्बे थे। लेकिन मरिया देह से निर्बल और मन से अत्यन्त भावुक थीं। उनकी अभिरुचि कविता में थी। उनका स्वभाव इतना कोमल और सरल था कि यदि पड़ोस के किसी परिवार में कोई बीमार पड़ता या किसी की मृत्यु होती, तो पता चलते ही यह सेवा और सहानुभूति के लिए उपस्थित हो जातीं। अपने बच्चों पर उनका बहुत ममत्व था - विशेषत: अपनी पहली संतान कामिल बुल्के पर।

फ़ादर बुल्के कहा करते थे कि मुझे पिता से बलिष्ठ शरीर और कर्मशक्ति तथा माता से भावुक हृदय और सेवा भाव मिला है और धर्म में निष्ठा माता और पिता दोनों से प्राप्त हुई है। इसमें संदेह नहीं कि उन्हें माता और पिता, दोनों के सर्वोत्तम गुण मिले थे, किन्तु उनके आरंभिक जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव माँ का पड़ा था। जब अनिवार्य सैनिक भर्ती का नियम लागू होने पर पिता प्रथम विश्वयुद्ध में लड़ाई पर चले गये, तो माँ ही बच्चों का सबसे बड़ा सम्बल थीं। उस समय कामिल, जूलियन, गैब्रिए ल और रोबर्ट, चारों बहुत छोटे थे। कामिल की उम्र लगभग पांच वर्ष थी और रोबर्ट की लगभग डेढ़ वर्ष। जब अदोल्फ, जो हॉलैंड में युद्धबंदी हो गये थे, लड़ाई समाप्त होने के बाद घर लौटे, तब भी परिवार के बच्चों की माँ से जो सहज समीपता थी, उसमें कहीं कोई अंतर नहीं आया। भारत आने के बाद संन्यासी कामिल बुल्के को ,अपने अतीत के नाटक का जो पात्र भुलाये नहीं भूलता था, वह उनकी माँ थीं। माँ का स्मरण उन्हें भावविह्वल कर देता था।

किन्तु फ़ादर बुल्के के आरंभिक जीवन पर पड़ने वाले कई अन्य प्रभाव भी थे, जो उनके मानस पर स्थायी रूप से अंकित हो गये थे।

उन दिनों बेलजियम का परिवेश बहुत धार्मिक था और आज भी वह यूरोप के बहुत-से देशों की तुलना में कहीं अधिक धार्मिक है। न केवल बुल्के-परिवार का वातावरण धर्म से अनुप्राणित था, वरन् वह जिस गाँव में निवास कर रहा था, वह शताब्दियों से प्रसिद्ध ईसाई तीर्थ है। लिस्सेवेगे में तेरहवीं शताब्दी में निर्मित कुँआरी मरियम का विशाल गिरजाघर है, जो अपनी कलात्मकता, चमत्कारपूर्ण कहानियों और ऊँची मीनार के लिए पूरे यूरोप में प्रसिद्ध है। बचपन में फ़ादर बुल्के सवेरे-सवेरे वेदी की सेवा में हाथ बंटाने गिरजाघर जाया करते थे। वह गाँव में आयोजित कुँवारी मरियम के वार्षिक जुलूस में बड़े उत्साह से सम्मिलित होते थे। वह गाँव के जिस कॉन्वेण्ट में तीन वर्ष की उम्र में प्राथमिक शिक्षा के लिए गये थे, उसकी प्रधान मदर सुपीरियर गेरट्रूड का व्यक्तित्व उन्हें बचपन से ही एक रहस्यमय आकर्षण में बाँध रहा था। पता नहीं क्यों, मदर गेरट्रूड को शिशु बुल्के के परमप्रसाद-ग्रहण के दिन ही उनकी आकृति में क्या दिखाई पड़ा, जो उन्होंने उनसे कहा था "भगवान् से संन्यासी बनने का वरदान माँगना।" जब वह इंजीनियरिंग के प्रथम वर्ष की परीक्षा पास हुए, तो वह उनसे फिर बोलीं - "इतना परिश्रम क्यों करते हो? तुम्हें तो संन्यासी बनना है।" जब वह एक दिन सच में संन्यासी हो गये, तो उनके सामने मदर गेरट्रूड के इन शब्दों का रहस्य अचानक उद्घाटित हो गया।

वस्तुत: मदर गेरट्रूड लिस्सेवेगे के गिरजाघर की दूसरी मीनार थीं। अपने सेवा-भाव और असाधारण व्यक्तित्व के कारण वह अपने जीवन-काल में ही आख्यान बन गयी थीं। वह ऐसी तेजस्वी धर्मसेविका थीं, जो अन्याय से समझौता नहीं करती और लोकसेवा के लिए अपना जीवन तक उत्सर्ग कर सकती हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में अँग्रेज सिपाहियों का पीछा करते हुए जर्मन घुड़सवार सैनिक गाँव में घुस आये थे और उनकी खोज में घूम रहे थे। डर से लोगों ने अपने दरवाजे बंद कर लिये थे, लेकिन जब जर्मन घुड़सवार कॉन्वेण्ट के समीप आये, तो मदर गेरट्रूड जान की चिंता किये बिना बाहर निकल कर जोर से बोलीं - "काइन

सोल्दात" ; यहाँ एक भी सैनिक नहीं और जर्मन आगे बढ़ गये। जब कभी फ़ादर बुल्के मदर ग्रेरटूड की चर्चा करते, तो वह उनके धर्माचरण और सेवानिष्ठता के साथ उनके साहस की इस घटना का उल्लेख अवश्य करते।

लेकिन फ़ादर बुल्के के आरंभिक जीवन पर अन्य कई प्रभाव पड़े थे। उनके परिवार से कुछ ऐसे लोगों की मित्रता थी, जो कलाओं की दुनिया के आदमी थे। उनमें एक थे , ब्रदर इल्देफ़ोन्स, जो उपन्यास-लेखक और संगीतकार थे, दूसरे थे ब्रेम्स जो चित्रकार थे। उन पर अपने गाँव के प्राकृतिक सौंदर्य से मंडित, हार्दिकतापूर्ण और सरल परिवेश का प्रभाव भी पड़ा था तथा बचपन से ही आत्मीय सम्बन्धों में जुड़े हुए साथियों और मित्रों की मंडली का भी। फ़ादर बुल्के ने समवयस्क ग्रामवासी मित्रों के साथ लिस्सेवेगे की पहली फुटबाल टीम की स्थापना की थी। लिस्सेवेगे से तीन किलोमीटर की दूरी पर उत्तर समुद्र है, जिसका गर्जन आसपास के गाँवों तक दिन-रात सुनायी देता है। गाँव से समुद्र तक एक पक्की लंबी सड़क है और फिर समुद्र के किनारे-किनारे एक पतली लंबी सड़क, जो साईकिल चलाने के लिए बनायी गयी है। फ़ादर बुल्के अक्सर पैदल या साइकिल से समुद्र के किनारे जाया करते, उसके तट की समानान्तर सड़क पर तेज हवाओं के विपरीत साइकिल चलाते या बालू पर बैठ कर मनोरंजन किया करते।

कामिल बुल्के के गाँव का वह प्रसिद्ध चमत्कारी गिरजाघर जिसे तीर्थस्थल की मान्यता प्राप्त है।

कान्वेण्ट की शिक्षा समाप्त होने पर फ़ादर बुल्के का दाखिला गाँव के नगरपालिका स्कूल में हुआ, जहाँ के प्रधानाध्यापक उनके सहपाठी और मित्र रेमों के पिता थे। देखते-देखते वहाँ की शिक्षा भी समाप्त हो गयी। लिस्सेवेगे में उच्च विद्यालय नहीं था और वहाँ के जो लड़के-लड़कियाँ आगे पढ़ना चाहते थे, वे या तो ब्रुगे जाते या समीप के किसी कस्बे के उच्च विद्यालय में नाम लिखाते। ब्रुगे के उच्च विद्यालयों में हर विद्यार्थी का प्रवेश संभव नहीं था, लेकिन कामिल बुल्के जैसे प्रतिभाशाली छात्र के लिए यह कोई समस्या नहीं थी। 1921 ई. में उन्होंने ब्रुगे के संत फ्रांसिस जेवियर विद्यालय में नामांकन कराया, जहाँ वह 1928 ई. तक पढ़ते रहे। वह प्रतिदिन गाँव से ट्रेन द्वारा ब्रुगे जाते और साँझ को घर लौट आते। अपने विनम्र मधुर स्वभाव और बौद्धिक प्रखरता के कारण वह विद्यालय में अपने अध्यापकों और सहपाठियों के प्रिय हो गये थे। हाई स्कूल का अध्ययन पूरा करने के पहले ही उन्होंने यह सोच लिया था कि यहाँ से उत्तीर्ण होने के बाद वह इंजीनियरिंग पढ़ेंगे, क्योंकि उस समय इंजीनियरिंग की प्रवेश-परीक्षा सबसे कठिन समझी जाती थी। इसलिए 1928 ई. में उच्च विद्यालय की परीक्षा पास करने के बाद वह इंजीनियरिंग की प्रवेश-परीक्षा देने लूवेन गये। स्वयं परिवार के लोगों को विश्वास नहीं था कि उन्नीस बरस का कामिल इतनी कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकेगा। किन्तु जब वह इस परीक्षा में प्रथम आये, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य और प्रसन्नता हुई तथा गाँव लौटने पर बधाई देने वाले पड़ोसियों, मित्रों और सम्बन्धियों का ताँता लग गया। लिस्सेवेगे के लिए तो अपने यहाँ के किसी लड़के के हाई स्कूल पास कर विश्वविद्यालय में प्रवेश करने की यह पहली घटना थी।

1928 ई. में फ़ादर बुल्के ने लूवेन विश्वविद्यालय के इंजीनियरिंग कॉलेज में नामांकन कराया। लूवेन लिस्सेवेगे से लगभग डेढ़ सौ किलोमीटर दूर दक्षिण-पूर्व की ओर है। यह बेलजियम की राजधानी ब्रुसेल्स के समीप है और यहाँ का विश्वविद्यालय यूरोप के सबसे पुराने और प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में है। फ़ादर बुल्के के अध्ययन-काल में यह विश्वविद्यालय फ्लेमिश आन्दोलन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। यहाँ आते ही वह इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये और शीघ्र ही उनकी गणना इसके अग्रणी छात्र-नेताओं में होने लगी। होश सम्हालने के बाद के दिनों से ही उनके सामने यह बात स्पष्ट थी कि बेल्जियम के फ्रेंचभाषी लोग फ्लेमिश-भाषियों के शोषक हैं,

कामिल बुल्के के गाँव के गिरजाघर में स्थित कुँवारी मरियम की मूर्ति –

न केवल बेलजियम की फ्रेंचभाषी अहंमन्य जनता फ्लेमिश भाषा को असंस्कृत और तुच्छ मानती है वरन् फ्रेंच भाषा और संस्कृति का भक्त फ्लेमिश अभिजात वर्ग भी उसे इसी दृष्टि से देखता है और दोनों की मिली भगत से फ्लेमिश जनता अपने ही देश में परदेशी हो गयी है। हर फ्लेमिश गाँव की तरह लिस्सेवेगे में भी इन सब बातों की चर्चा हुआ करती थी। अदोल्फ़ बुल्के का पूरा परिवार मातृभाषा-भक्त था। लूवेन विश्वविद्यालय के फ्लेमिश आन्दोलन कर्त्ताओं की तरह फ़ादर बुल्के भी फ्लेमिश जनता पर सरकार द्वारा फ्रेंच थोपे जाने के कट्टर विरोधी थे। वह इस आंदोलन की गतिविधियों में भाग लेने के लिए अपनी कक्षाएँ तक छोड़ देते थे और यदि उनकी कक्षाओं में कोई अध्यापक फ्रेंच में व्याख्यान देता, तो वह जब तक बोलता रहता, फ़ादर बुल्के अपने सहपाठियों के साथ जोर-जोर से फ्लेमिश गीत गाते रहते। लेकिन कामिल बुल्के, जो देखते-देखते अपने विश्वविद्यालय और नगर के भाषा-आन्दोलन के एक अत्यंत लोकप्रिय छात्र नेता बन गये थे, अपनी असाधारण मेधा और

कर्मशक्ति के कारण पढ़ाई का काम भी पूरा करते जा रहे थे और अपने विषय के बहुत अच्छे छात्र समझे जाते थे।

इंजीनियरिंग के द्विवर्षीय पाठयक्रम का पहला वर्ष समाप्त हो गया था। प्रथम वर्ष की परीक्षा सामने थी और फ़ादर बुल्के इसकी तैयारी के लिए लिस्सेवेगे आ गये थे। इन्हीं दिन एक ऐसी घटना हुई जिसने उनके जीवन की धारा ही मोड़ दी।

एक दिन साँझ के समय वह अपने अध्ययन-कक्ष में परीक्षा की तैयारी के विचार से कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। घर के लोग कहीं बाहर गये हुए थे और उस एकांत का लाभ उठाकर वह एकाग्रतापूर्वक पुस्तक पढ़े जा रहे थे कि अचानक उसके पृष्ठ पर एक बिजली-सी कौंधी और उस आलोक में उन्होंने जान लिया कि उन्हें संन्यासी बनना है। उन्होंने पुस्तक रख दी और वह रोने लगे क्योंकि उन्होंने भविष्य की जो सुंदर मूर्ति गढ़ी थी, वह अचानक टूट गयी थी, लेकिन उन्होंने यह अनुभव किया कि वह प्रभु का बुलावा है और वह इसके सामने विवश हैं। उन्होंने किसी प्रकार अपने को नियंत्रित किया, घर की कुंजी पड़ोसी को दे कर घूमने चले गये और काफी रात गये घर लौटे। तब तक परिवार के लोग लौट आये थे, लेकिन सदा प्रसन्न रहने वाले कामिल का बोझिल और बुझा-बुझा चेहरा देखकर किसी को उनसे बात करने का साहस नहीं हुआ। उन्होंने कई दिन इसी उदासी में गुजारे और परीक्षा देने लूवेन आ गये। उन्होंने परीक्षा दी और बहुत ऊँचे अंकों से उत्तीर्ण हो कर दूसरे वर्ष की पढ़ाई में लग गये। वह इंजीनियरिंग के साथ-साथ नगर की जेसुइट सेमिनरी मे बीच-बीच में, लैटिन पढ़ने जाने लगे। सेमिनरी में उनके गुरु और पथप्रदर्शक फ़ादर साल्समैन थे, जो ईसाई नीतिशास्त्र के विश्वविख्यात आचार्यों में गिने जाते थे। उनके परम मित्र कार्लोस (डॉ. के. एल. देब्रिन्दत) के अतिरिक्त उनके संन्यास-सम्बन्धी निर्णय से कोई भी परिचित नहीं था। किन्तु दूसरे वर्ष की परीक्षा देने के बाद उन्होंने अपना वह निश्चय माता-पिता को बता देना चाहा और घर आने पर एक दिन उन्हें इसकी सूचना दे दी। माँ ने रोते हुए कहा, "मैं प्रभु की इच्छा स्वीकार करती हूँ।" सदा की तरह शान्त और मितभाषी पिता बस इतना बोले "तुम्हारा घर पर होना हमारे लिए कितना अच्छा होता!" दोनों बहुत विचलित थे क्योंकि उन्होंने वह स्वप्न देखा था कि उनका सबसे योग्य पुत्र इंजीनियर बन कर परिवार की गौरव-वृद्धि करेगा। लेकिन उनके आस्तिक मन ने प्रभु की इच्छा को भक्ति-पूर्वक स्वीकार कर लिया।

फ़ादर बुल्के 23 सितम्बर, 1930 ई. को गेन्त के समीप वर्त्ती नगर ड्रॉदंग्न के जेसुइट नवशिक्षालय में दाखिल हो गये, जहाँ वह दो वर्ष रहे बाद की धर्म-शिक्षा के लिए उन्हें हॉलैंड के वाल्केनबर्ग के जेसुइट केन्द्र में भेज दिया गया। वहाँ उनका पाठयक्रम 12 सितम्बर, 1932 को आरंभ हुआ और इस पाठयक्रम में सम्मिलित होने का अर्थ यह था कि अब इस नवसंन्यासी का वैराग्य अविचल हो गया है। कारण, ड्रादंग्न की धर्मचर्या समाप्त करने के बाद अन्य नवशिष्यों की तरह उनके सामने भी संन्यास-संबंधी नियम पर पुनर्विचार का विकल्प रखा गया था और उन्होंने यह कहा था कि उनका निर्णय अपरिवर्तनीय है। वाल्केन-वर्ग कैथलिक जर्मनों का जेसुइट धर्मशिक्षा-केन्द्र था। फ़ादर बुल्के के आत्मनिर्माण में वाल्केनवर्ग की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण थी। यहाँ उन्होंने बहुत-कुछ सीखा था और अपने ज्ञान को पहले से अधिक समृद्ध किया था। यहाँ उन्होंने न केवल लैटिन और ग्रीक में दक्षता प्राप्त की थी, वरन् ईसाई धर्म और दर्शन की उच्च जानकारी भी। वहाँ उन्होंने इतनी निष्ठा से जर्मन सीखी थी कि वह जर्मनों की तरह जर्मन बोलने और लिखने लगे थे। उनकी प्रारंभिक रचनाएँ जर्मन भाषा में हैं, जिनके शीर्षक है "मेरा गाँव" और "मनुष्य मात्र की समानता"। दोनों रचनाएँ 1933 ई. में भाषा के अभ्यास के रूप में प्रस्तुत हुई थीं, किन्तु वे इतनी सुन्दर हैं कि उन्हें सरलता से फ़ादर बुल्के के साहित्य-लेखन का प्रस्थान-बिन्दु कहा जा सकता है। वाल्केनबर्ग में रहते समय उन्होंने गेटे, हाइने और रिल्के का साहित्य पढ़ा था और उनकी बहुत-सी कविताएँ मुख्यत: रिल्के की कविताएं- उन्हें कंठाग्र हो गयी थीं। यहीं रह कर उन्होंने दर्शन-शास्त्र में एम.ए. किया था और अपनी मेधा तथा धर्म-गुरुओं द्वारा प्रदत्त ज्ञान के गुणनफल के रूप में इतने अधिक ऊँचे अंक पाये थे कि उनकी अवस्था की तुलना में उनकी उपलब्धि को देख कर संघवासी आश्चर्य में पड़ गये थे। ग्रिगोरियन विश्वविद्यालय की इस परीक्षा में उन्हें नब्बे प्रतिशत अंक मिले थे।

1934 ई. में फ़ादर बुल्के वाल्केनबर्ग से लूवेन की सेमिनरी में वापस आ गये। वहाँ उनके सामने दो विकल्प रखे गये - या तो वह स्वदेश में रहकर ही धर्म-सेवा का कार्य करें या स्वदेश से बाहर रहने का निर्णय करें। उन्होंने दूसरे विकल्प का चुनाव किया और यह इच्छा प्रकट की कि उन्हें धर्म-सेवा के लिए भारत भेजा जाये। उन्होंने अपने प्रान्त के फ़ादर लीवेन्स के विषय में यह सुना था कि उन्होंने भारतवर्ष के आदिवासियों के बीच बड़ा मूल्यवान सेवा-कार्य किया है और यह भी कि उनके लिए बहुत-कुछ करना आवश्यक है। अधिकारियों ने उन्हें यह सूचित किया कि उन्हें 1935 ई. में किसी समय भारत भेजा जायेगा।

उन दिनों बेल्जियम में उन्नीस वर्ष की उम्र में अनिवार्य सैनिक सेवा का नियम था। इसके स्थान में कोई व्यक्ति सेना के चिकित्सा विभाग में काम करने के लिए चिकित्सा विज्ञान का एकवर्षीय पाठयक्रम भी पूरा कर सकता था। फ़ादर बुल्के ने बाहर जाने वाले मिशनरियों के लिए निर्धारित उष्ण कटिबन्धीय चिकित्सा के पाठयक्रम में नामांकन कराया, किन्तु इसके साथ वह लूवेन विश्वविद्यालय में डॉक्टर लमैत्र के निर्देशन में आइन्स्टाइन के सापेक्षवाद और उच्चतर गणित का भी अध्ययन करते रहे। जून, 1935 ई. में वह दोनों पाठयक्रम पूरे कर चुके थे। अक्टूबर में उनकी भारत-यात्रा आरंभ होने वाली थी। अपने माता-पिता और परिवार के अन्य लोगों से मिलने और उनसे अंतिम विदाई लेने के लिए वह अक्टूबर में लिस्सेवेगे आ गये। वह कई दिनों तक पड़ोसियों तथा रम्सकपैले, क्नौंके आदि गाँवों के सम्बन्धियों से भेंट करते रहे। सब लोग उन्हें यही सोच कर विदा दे रहे थे कि अब उनसे फिर कभी भेंट नहीं होगी। 20 अक्टूबर को उन्होंने माता-पिता तथा अन्य सभी स्वजनों और मित्रों से विदाई ली और जहाज से नवम्बर में बम्बई पहुँचे। उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि माँ ने उन्हें पूरी खुशी से विदा किया था, लेकिन जब वह बम्बई से राँची आये तो उन्हें परिवार के पत्रों से मालूम हुआ कि घर से उनके विदा होते ही माँ अपनी इस प्रिय

संतान के वियोग का दु:ख नहीं सह सकीं और बेहोश हो गईं। 10 नवम्बर, 1935 ई. को लिस्सेवेगे से माँ ने उन्हें जो पत्र लिखा उसके शब्द उनके ममत्वपूर्ण और धर्मनिष्ठ स्वभाव के विषय में बहुत-कुछ कह देते हैं :

"प्रिय कामिल,

तीन सप्ताह पहले तुम चले गये। अब हम समझते हैं कि तुम अपने गन्तव्य पर पहुँच गये होगे। कामिल, विश्वास रखना कि मैं रोयी - बहुत रोयी, जब तुम चले गये। बात ऐसी नहीं थी कि मैं इसका विरोध करना चाहती थी कि तुम अपने बुलावे के अनुसार चले जाते। बात ऐसी बिल्कुल नहीं, क्योंकि मुझे तुम पर बहुत गर्व है, किन्तु मैं तो मातृहृदय हूँ और मैंने सारी आत्मा से बराबर तुम्हें प्यार किया और इसी कारण विदाई बहुत दु:खद हुई। बेटा, विश्वास रखना कि यदि मैं रोती हूँ, तो वह इसलिए नहीं कि मैं सुखी नहीं हूँ। मैं ईश्वर को धन्यवाद देती हूँ कि उसने मुझे ऐसी सन्तान दी और मैं तुम्हारे लिए बहुत प्रार्थना करूँगी, जिससे तुम सुदूर भारत में बहुत भलाई कर सको और इसलिए भी कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक रहे।"

तुम्हारी माँ, जो तुमको नहीं भूलती।

(बेल्जियम में फादरे बुल्के का निवास स्थान)

मनरेसा हाउस, राँची के येसुसंघी अधिकारियों ने 1936 की जनवरी में फ़ादर बुल्के को दार्जिलिंग के संत जोसेफ कॉलेज में भौतिकी और रसायन विज्ञान के अध्यापन के लिए भेजा। लेकिन वहाँ का मौसम उनके अनुकूल नहीं पड़ा और वह जून में बीमार हो कर राँची लौट आये। स्वस्थ होते ही वह अपने मिशन के संत इग्नेशियस हाई स्कूल, गुमला में गणित अध्यापक नियुक्त हुए और अपने विषय के अध्यापन के अतिरिक्त हिन्दी का अध्ययन करने लगे । भारत आगमन के कुछ ही महीनों के भीतर उन्होंने यह अनुभव किया कि यहाँ की जनता की सेवा के लिए हिन्दी का ज्ञान आवश्यक है। उन्हें यह देख कर बड़ा दु:ख हुआ कि यहाँ एक विदेशी भाषा अँगरेजी का बोलबाला है और यहाँ की जनभाषाएँ उपेक्षित हैं। उन्हें भारत की स्थिति बेल्जियम जैसी लगी, जहाँ मातृभाषा फ्लेमिश की उपेक्षा होती थी और फ्रेंच का वर्चस्व था। उन्हें यह स्थिति असह्य प्रतीत हुई और उन्होंने यह निश्चय किया कि वह भारत की बहुसंख्यक जनता की मातृभाषा हिन्दी पढ़ेंगे और विदेशी भाषा अँग्रेजी के स्थान में उसे प्रतिष्ठित करने का यथा संभव प्रयत्न करेंगे। अत: उन्होंने गुमला में हिन्दी का अध्ययन आरंभ किया और वह हिन्दी के अध्यापन की घंटियों में क्लास में अपने विद्यार्थियों के साथ सबसे पिछली पंक्ति में बैठ कर पढ़ने लगे। यद्यपि उन्हें हिन्दी गद्य के अध्ययन में अधिक अभिरूचि थी, किन्तु वह तुलसी की कविता से अभिभूत-जैसे थे। गुमला वह चित्रकूट था, जिसके घाट पर उन्होंने तुलसी के दर्शन किये थे और उनके निष्ठावान भक्त बन गये थे।

1938 ई. में पूरे वर्ष भर उन्होंने हजारीबाग के सीता-गढ़ में पंडित बदरीदत्त शास्त्री से हिन्दी और संस्कृत पढ़ी। अपनी असाधारण मेधा और कर्मशक्ति के कारण उन्होंने हिन्दी और संस्कृत पर इतना अधिक अधिकार कर लिया कि वह सरलतापूर्वक पंचतंत्र, वाल्मीकि-रामायण और तुलसी-साहित्य का अर्थ-निरूपण करने लगे। उनके विस्तृत भाषा ज्ञान के कारण शास्त्री जी उन्हें 'चलता-फिरता शब्दकोश' कहने लगे।

1939 ई. की जनवरी में यह कर्सियांग आ गये, जो दार्जिलिंग से कुछ पहले, नीचे पड़ता है। वहाँ का सेंट मेरी थियोलॉजियेट उस समय भारत में येसुसंघियों का एकमात्र धर्मशिक्षा-कॉलेज था। वहाँ समस्त भारत के काथलिक संन्यासी धर्म-विज्ञान की शिक्षा पूर्ण करने आते थे। अपनी जलवायु और वैदुषिक स्तर के कारण वह भारत के बाहर के येसुसंघियों का भी आकर्षण-केंद्र था। यहाँ फ़ादर बुल्के चार वर्ष रहे और उन्होंने फ़ादर बायार्त और वोल्कार्ट-जैसे योग्य गुरुओं की शिक्षा पायी। फ़ादर बार्यात के निर्देशन में ही उन्होंने न्याय-वैशेषिक के ईश्वरवाद पर लघु शोध-प्रबंध लिखा, जो बाद में द थीज़्म ऑफ न्याय-वैशेषिक के नाम से कलकत्ता के ओरियेण्टल इन्स्टीच्यूट से 1947 ई. में प्रकाशित हुआ। फ़ादर वोल्कार्ट के परामर्श और सहयोग से उन्होंने द सेवियर नामक पुस्तक तैयार की, जो उनकी मौलिक कल्पना की उपज थी। 'द सेवियर' में नया विधान के चार सुसमाचारों में उपलब्ध ईसा की जीवनी-संबंधी सामग्री का व्यवस्थापन किया गया है। फ़ादर बुल्के ने कर्सियांग में 'मुक्तिदाता' के नाम से इसका हिन्दी अनुवाद भी किया, जो 1940 ई. में प्रकाशित हुआ। 'द सेवियर' और 'मुक्तिदाता' के कई संस्करण हुए हैं और इनकी एक लाख से अधिक प्रतियाँ बिकी हैं। 'मुक्तिदाता' का प्रथम संस्करण इस बात का प्रमाण है कि फ़ादर बुल्के ने थोड़े समय के भीतर ही हिन्दी का कितना अधिक ज्ञान अर्जित कर लिया था। वस्तुत: यह कर्सियांग में अवकाश के समय हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन करते रहे और 1940 ई. में उन्होंने हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी वर्ष एक ऐसी बात हुई जिससे उनका हिन्दी-संबंधी उत्साह और भी बढ़ गया। काका कालेलकर कर्सियांग पधारे थे। वहाँ फ़ादर बुल्के की अध्यक्षता में एक बड़ी सभा हुई, जिसमें उनका हिन्दी भाषण सुन कर काका साहब भाव विह्वल हो गये और वह बोले 'फ़ादर बुल्के हम लोगों में से एक बन गये हैं।' इससे न केवल उनका हिन्दी-प्रेम बढ़ा वरन् हिन्दी के उच्चतर अध्ययन का संकल्प भी सुदृढ़ हुआ।

धर्मशिक्षा के अध्ययन-क्रम में 1941 ई. में उनका पुरोहिताभिषेक हुआ और वह ब्रदर बुल्के से फ़ादर बुल्के बन गये। 1943 ई. में वह धर्म-साधना पूर्ण करने के लिए कोडाइकनाल (तमिलनाडु) भेज दिये गये। साधना की अवधि नौ महीने की थी। कोडाइकनाल से उन्होंने मनपाड की यात्रा की, जहाँ समुद्र-तट पर संत फ्रांसिस जेवियर की गुफा है।

1944 ई. में प्रकाशित अपनी इस यात्रा के वृतांत के अंत में उन्होंने यह लिखा : " दोपहर में इस नगर से विदा होते समय मैं यह सोचने लगता कि अन्य किसी स्थान से कहीं अधिक मनपाड में कोई व्यक्ति इस कथन के सत्य का साक्षात्कार कर सकता है। - "इस पृथ्वी पर केवल एक ही दु:ख और वह है संत नहीं होने का।"

समय बीतने के साथ फ़ादर बुल्के की यह अनुभूति दृढ़ होती जा रही थी कि भारतीय जनता का हृदय जीतने के लिए उसकी भाषा में बात करनी होगी और यह भी कि यदि धर्मों की दीवार को तोड़ना है, तो उनके बीच हिन्दी के माध्यम से सम्वाद आरंभ करना होगा।

फ़ादर बुल्के " मनरेसा हाउस" राँची के अपने घर के बरामदे में अध्ययन करते हुये

किन्तु उनके सामने समस्या यह थी कि वह किस विश्वविद्यालय में हिन्दी के स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए प्रयत्न करें। उन दिनों कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी में स्नातकोत्तर अध्ययन होता था, किन्तु इसमें विशेष प्रतिष्ठा काशी और इलाहबाद की थी। 1940 में ही उन्होंने अपने मनोनुरूप विश्वविद्यालय के चुनाव के लिए उत्तर भारत के कई नगरों की यात्रा की थी। काशी में वह आचार्य रामचंद्र शुक्ल से मिले थे, जिन्होंने उनके हिन्दी-प्रेम को बढ़ावा दिया था, किन्तु जब वह इलाहाबाद आये, तो वहाँ के परिवेश से बहुत प्रभावित हुए और यह निर्णय किया कि उन्हें जब कभी एम.ए. करने का अवसर मिलेगा, वह इलाहाबाद में ही अध्ययन करेंगे।

कोडाइकनाल से राँची आने पर उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. धीरेन्द्र वर्मा को पत्र लिखा कि वह हिन्दी में एम.ए. करना चाहते हैं, किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। अत: उन्होंने स्वतंत्र छात्र के रूप में दूसरे वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय के साथ बी.ए. की परीक्षा पास की और हिन्दी में नामांकन कराने इलाहाबाद पहुँचे। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने उनसे कहा कि उनका विश्वास यह है कि कोई भी विदेशी हिन्दी में एम.ए. नहीं कर सकता है। डॉ. वर्मा ने उनकी शैक्षिक योग्यता के संबंध में पूछताछ की और उनके हिन्दी-ज्ञान की परीक्षा करने के उद्देश्य से उन्हें विनयपत्रिका के दो पद देकर उनका अर्थ-निरूपण करने को कहा। जब उन्होंने फ़ादर बुल्के का अर्थ-निरूपण देखा, तो विस्मय और प्रसन्नता से अभिभूत हो गये और उन्हें एम.ए. में प्रवेश की अनुमति दे दी।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अतिरिक्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उनके अध्यापक थे - डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', देवी प्रसाद शुक्ल और डॉ. माताप्रसाद गुप्त। फ़ादर बुल्के के सहपाठियों में प्रमुख थे - डॉ. धर्मवीर भारती और डॉ. जगदीश गुप्त। रघुवंश जी उस समय शोध कर रहे थे और फ़ादर बुल्के से घनिष्ठ थे। फ़ादर बुल्के भी उमाशंकर शुक्ल से टयूशन लेते थे, जो रघुवंश जी की तरह ही विभाग में शोध कर रहे थे। अपने मित्रों के माध्यम से वह हिन्दी के उन सभी साहित्यकारों के संपर्क में आये, जो या तो इलाहाबाद में रह रहे थे या इलाहाबाद आया करते थे। वह महादेवी जी और पंत जी से घनिष्ठ होते गये - विशेषत: महादेवी जी से, जिन्हें वह अपनी बड़ी बहन मानते और आजीवन दीदी के रूप में स्मरण करते थे। इलाहाबाद के बाहर के साहित्यकारों में मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी से उनकी भेंट कई अवसरों पर हुई। मैथिलीशरण गुप्त से उनकी आत्मीयता आजीवन बनी रही।

1947 ई. में जब उन्होंने एम.ए. कर लिया, तो डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की प्रेरणा से उन्होंने डॉक्टरेट के लिए रामभक्ति के विकास पर शोध आरंभ किया। उनके शोध-निर्देशक डॉ. माताप्रसाद गुप्त थे। उन्होंने अपने प्रबंध के प्रथम अध्याय के लिए रामकथा के विकास से सम्बन्धित सामग्री का संकलन किया, जिसका परिमाण इतना अधिक था और जिसके निष्कर्ष इतने रोचक कि डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने उन्हें अपना विषय संशोधित कर केवल रामकथा के विकास पर कार्य करने की अनुमति दे दी। 1949 ई. में उन्हें डी. फिल्. की उपाधि मिली और रामकथा : उत्पत्ति और विकास शीर्षक से उनका शोध-प्रबंध 1950 ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की हिन्दी परिषद् द्वारा प्रकाशित हुआ। उन्होंने बाद में भी इस विषय पर प्राय: अट्ठारह वर्षों तक अनुसंधान किया। फलत: इसमें प्रभूत नवीन सामग्री का समावेश होता गया। रामकथा में संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, बंगला, तमिल आदि सभी प्राचीन और आधुनिक भारतीय भाषाओं में उपलब्ध राम-विषयक विपुल साहित्य का ही नहीं, वरन् तिब्बती, बर्मी, इंडोनेशियाई, थाई आदि एशियाई भाषाओं के समस्त राम-साहित्य का, इस कथा के विकास के अध्ययन की दृष्टि से, अत्यंत वैज्ञानिक रीति से उपयोग हुआ है। इसके प्रकाशन के साथ ही फ़ादर बुल्के की गणना भारतविद्या और हिन्दी के सबसे बड़े विद्वान में होने लगी। यही नहीं, यह विश्वकोशात्मक ग्रन्थ उनकी विश्वव्यापी कीर्ति का आधार बन गया। रामकथा की एक अन्य विशेषता यह भी है कि यह मूलत हिन्दी माध्यम में प्रस्तुत हिन्दी विषय का पहला शोध-प्रबंध है। जिस समय फ़ादर बुल्के इलाहाबाद में शोध कर रहे थे, उस समय पूरे देश में यह नियम प्रचलित था कि सभी विषयों के शोध-प्रबंध केवल अँग्रेजी में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। फ़ादर बुल्के के लिए अँग्रेजी में शोध-प्रबंध प्रस्तुत करना सरल था, किन्तु यह बात उनके हिन्दी स्वाभिमान के विपरीत थी और उन्होंने आग्रह किया कि उन्हें हिन्दी में ही शोध-कार्य प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की

हिन्दी में शोध- कार्य प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की जाये। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन उपकुलपति डॉ. अमरनाथ झा ने उनके आग्रह पर शोध - संबन्धी नियमावली में संशोधन कराया और उन्हें अनुमति दे दी। इसके बाद तो अन्य उत्तर भारतीय विश्वविद्यालयों में भी आधुनिक भारतीत भाषाओं में शोध - प्रबंध प्रस्तुत करने की अनुमति दी जाने लगी।

1950ई. में संत जेवियर कॉलेज , रांची के हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में फ़ादर बुल्के की नियक्ति हुई और वोह स्थायी रूप से मनरेसा हाउस में रहने लगे, जो येसु- संघियों का प्रमुख मठ है। किन्तु बीच- बीच में हिन्दी भाषा और तुलसी - साहित्य पर भाषण देने, रामकथा-संबंधी नवीन सामग्री का संकलन करने, विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी साहित्य-संस्थाओं की बैठकों में भाग लेने या मित्रों से मिलने के लिए वह छोटी-बड़ी यात्राओं पर बाहर जाते रहे। 1950 ई. के बाद का उनका समस्त जीवन अत्यंत कार्य-व्यस्त था। उनके आवास पर अक्सर सवेरे और दोपहर बाद उनसे मिलने वालों की भीड़ लगी रहती थी। 1960 ई. तक उनका बहुत समय अध्यापन और उसकी तैयारी में जाता था। वह इण्टर से लेकर बी.ए. (प्रतिष्ठा) तक की कक्षाओं में हिन्दी के अतिरिक्त कुछ-कुछ संस्कृत भी पढ़ाते थे। किन्तु वह शीघ्र ही यह अनुभव करने लगे कि विद्यार्थी विषय में रुचि नहीं लेते, बल्कि केवल परीक्षा पास करने में रुचि रखते हैं इसलिए उन्हें अध्यापन से विरक्ति होने लगी। उन्होंने यह निश्चय किया कि वह अध्यापन से मुक्त हो कर अपना सारा ध्यान शोध और हिन्दी-सेवा पर केंद्रित करेंगे। उन्होंने इसके लिए रोम-अवस्थित अपने धर्माधिकारियों से अनुमति माँगी। संघ ने उन्हें अध्यापन-कार्य से मुक्त कर दिया, किन्तु इस शर्त के साथ कि वह विभागाध्यक्ष बने रहेंगे। बाद में भी वह कुछ वर्षों तक बी.ए. कक्षाओं में रामचरितमानस पढ़ाते रहे। किन्तु अब उन्हें अपनी योजना के अनुसार कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता थी।

उन्होंने सबसे पहले रामकथा के दूसरे संस्करण के लिए सामग्री-संकलन का कार्य किया और 1973 ई. में इसके तृतीय परिवर्द्धित संस्करण के प्रकाशन के बाद भी वह इस विषय पर अनुसंधान करते रहे। हिन्दी में उनकी विशेषज्ञता का प्रधान क्षेत्र तुलसी-साहित्य था। जैसे-जैसे उनका रामकथा-संबंधी अध्ययन व्यापक होता गया, वैसे-वैसे तुलसी के प्रति उनकी श्रद्धा भी बढ़ती गयी। तुलसी में उन्हें न केवल रामकथा का सबसे मर्यादित रूप मिला, वरन् भगवद्भक्ति का ऐसा स्वरूप भी, जिसे वह ईश्वर-भक्त मात्र के लिए आदर्श मानते थे। उन्होंने अपने इस महाकवि पर अनेक महत्त्वपूर्ण निबंध लिखे और वह बाइबिल का अनुवाद समाप्त करने के बाद तुलसी पर एक विस्तृत ग्रंथ लिखना चाहते थे। उनका यह स्वप्न पूरा नहीं हुआ, किन्तु उनके निबंधों और रामकथा और तुलसीदास तथा मानस कौमुदी, इन दो पुस्तकों से उनकी तुलसी-विषयक दृष्टि की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

यद्यपि वह बहुभाषाविद् थे और अपनी मातृभाषा फ्लेमिश के अतिरिक्त अँगरेजी, फ्रेंच, जर्मन, लैटिन, ग्रीक, संस्कृत और हिन्दी के भी पंडित थे, किन्तु 1947 ई. में हिन्दी में एम.ए. करने के बाद वस्तुत हिन्दी ही उनके मन, वचन और कर्म की - उनकी आत्मा और समस्त व्यक्तित्व की भाषा बन गयी थी। वह प्राय: पिछले तीस वर्षों से मुख्य रूप में हिन्दी में कार्य करते रहे थे और हिन्दी की सेवा के निमित्त ही अन्य भाषाओं का आश्रय लेते थे। उनका विश्वास था कि ज्ञान-विज्ञान के किसी भी विषय की सक्षम-से-सक्षम अभिव्यक्ति हिन्दी में संभव है और अँग्रेजी पर आश्रित बने रहने की धारणा निरर्थक है। उनका दृढ़ विश्वास था कि हिन्दी निकट भविष्य में ही समस्त भारत की सर्वप्रमुख भाषा बन जायेगी।

अतएव हिन्दी में कार्य करने तथा अन्य भाषा-भाषियों के लिए हिन्दी सीखने की सुविधाओं के विस्तार के निमित्त उन्होंने कोश-निर्माण के क्षेत्र में कार्य किया। इस दिशा में उनका प्रथम कार्य ए टेकनिकल इंगलिश-हिन्दी ग्लॉसरी है। उनका अंग्रेजी-हिन्दी कोश 1968 ई. में प्रकाशित हुआ। अब तक इसके चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और इसकी एक लाख से अधिक प्रतियाँ बिक चुकी हैं। 'रामकथा' की तरह उनका अँगरेजी-हिन्दी कोश भी प्रसिद्ध हुआ और यह न केवल विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा सरकारी कामकाज का प्रामाणिक कोश बन गया है, वरन् भारत सरकार के सभी केन्द्रीय कार्यालयों एवं समस्त भारतीय दूतावासों में अधिकारिक कोश के रूप में व्यवहरित होने लगा है।

फ़ादर बुल्के ने शोध और कोश-निर्माण के क्षेत्र में ही नहीं, वरन् अनुवाद क्षेत्र में भी उल्लेख्यनीय कार्य किया। उन्होंने मॉरिस मेटरलिंक के विश्वप्रसिद्ध नाटक द ब्लू बर्ड का नील पंछी ;(1958 ई.) के नाम से अनुवाद किया, जो बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद मूल फ्रेंच से किया गया था। इसके बाद उन्होंने अनुवाद की एक बड़ी योजना में हाथ लगाया,जिसका लक्ष्य लैटिन से 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' ; 'पुराना विधान'और ग्रीक से 'न्यू टेस्टामेण्ट' (नया विधान) का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करना था। इस योजना की पूर्ति के पहले चरण में उन्होंने नया विधान के सुसमाचार और प्रेरित चरित नामक भाग प्रकाशित किये और चर्च में होने वाले धार्मिक पाठों का अनुवाद तीन खंडों में प्रकाशित किया। उनकी इन रचनाओं का अभूतपूर्व स्वागत हुआ और उन्होंने बाइबिल के हिन्दी-भाषी पाठकों के अनुरोध पर संपूर्ण नया विधान का अनुवाद प्रस्तुत किया। नया विधान या हिन्दी बाइबिल के अब तक दो संस्करण हो चुके हैं। यह 1979 से 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' का अनुवाद कर रहे थे, जिसकी पृष्ठ-संख्या लगभग दस सौ पचास है। वह उसके नौ सौ पृष्ठों का अनुवाद पूरा कर चुके थे, लेकिन उनकी मृत्यु के कारण यह कार्य अपूर्ण ही रह गया था और इसे मैंने पूरा किया।

फ़ादर बुल्के का साहित्य बहुत विस्तृत है। उनकी छोटी-बड़ी पुस्तकों की कुल संख्या उनतीस है और शोध-निबंधों की संख्या लगभग साठ। इसके अतिरिक्त हिन्दी विश्वकोश तथा अन्य कई संपादित ग्रंथों में सम्मिलित उनके लगभग सौ छोटे-बड़े निबंध हैं तथा उनके द्वारा सुरक्षित बहुत-सी रेडियो वार्ताएं हैं, जिन्हें वह महत्त्वपूर्ण मानते थे। लेखन के अतिरिक्त वह कई महत्त्पूर्ण संस्थाओं से उचित रूप में मानक थे। वह बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्,काशी नागरी प्रचारिणी सभा और बेल्जियन रॉयल अकादमी के सम्मानित सदस्य थे। अपनी विद्वत्ता और श्रेष्ठ मानवीय गुणों के कारण वह 1974 ई. में गणतंत्र दिवस के अवसर पर पद्मभूषण से अलंकृत हुए थे। 1981 में उन्हें बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने वयोवृद्ध साहित्य पुरस्कार से सम्मानित किया था और 1982 में उन्हें राँची एक्सप्रेस ; (दैनिक) द्वारा संचालित राधाकृष्ण पुरस्कार मरणोपरांत प्रदान किया गया है।

फ़ादर बुल्के उन विदेशी संन्यासियों में थे, जो भारत आ कर भारतीयों से अधिक भारतीय हो गये थे। उन्होंने यहाँ की जनता के जीवन से अपने को एकाकार कर लिया था। उन्हें देख कर कोई भी व्यक्ति यह अनुभव कर सकता था कि संन्यास का अर्थ जीवन और जगत् का निषेध न होकर स्वत्व का निषेध है और स्व का ऐसा विस्तार, जिसमें पूरी दुनिया के लिए ममत्व भरा हुआ है। वह प्रत्येक आगन्तुक से इतने स्नेह से मिलते थे कि वह अभिभूत हो जाता था। वह बारम्बार यह कहते थे कि मुझे सबसे अधिक संतोष तब मिलता है, जब मैं दूसरों के लिए कुछ कर पाता हूँ। उन्होंने दूसरों के लिए कुछ कर पाने के जो माध्यम चुने थे, उनमें एक था उनका समृद्ध पुस्तकालय, जिससे वह छात्रों शोधार्थियों और परिचितों को पढ़ने के लिए पुस्तकें दिया करते थे। दूसरा माध्यम था दुःखी जनों को उचित परामर्श दे कर उनका मार्ग-दर्शन। उन्होंने इन सब कार्यों के लिए प्रतिदिन सवेरे नौ बजे से बारह बजे तक का समय निर्धारित कर दिया था और शुक्रवार को तो वह जैसे पूरी दुनिया के लिए दिन भर खाली थे। इसके अतिरिक्त, देश-विदेश के बहुत-से विद्वानों और सामान्य जनों की अनेकानेक प्रकार की जिज्ञासाओं से भरे पत्र उन्हें मिला

करते थे और शायद ही कोई पत्र अनुत्तरित रहता था। इस प्रकार वह अहर्निश आजीवन आत्मदान-निरत थे और इस आत्मदान और लोक-सेवा का ही एक रूप उनका हिन्दी-संबंधी कृतित्व था। पूर्णता और शुद्धता का आग्रह उनमें इतना अधिक था कि वह एक-एक तथ्य की प्रामाणिकता और एक-एक प्रयोग की उपयुक्तता की जाँच पर कभी-कभी घंटों परिश्रम करते थे।

फादर बुल्के बहुत वर्षों से अस्वस्थ चले आ रहे थे । 1950 ई. के आसपास ही उनके कान खराब हो गये थे और वह श्रवणयंत्र लगाकर ही सुन पाते थे। उनका पक्वाशय बचपन से ही कमजोर था और भारत आने के बाद उन्हें पेप्टिक अल्सर हो गया था, जिससे वह 1970 ई. के आसपास मुक्त हो गये थे। किन्तु पिछले दस-बारह वर्षों से कई नये रोग उनके साथी हो गये थे। वह उच्च्य रक्तचाप तथा गुर्दे और हृदय की कमजोरी के शिकार थे और दमा तो जैसे उनका जीवन-सहचर था, किन्तु वह अपने रोगों की चिंता किये बिना निरंतर कार्यरत थे। फिर भी, वह जिस रूप में अपनी जीवनी-शक्ति का बूँद-बूँद रस निचोड़ कर हिन्दी की सेवा कर रहे थे, उससे उनका शरीर टूटता जा रहा था। 1981 के आरंभ से ही वह अशक्त होते जा रहे थे। किन्तु उनकी दुर्दम्य जिजीविषा हार मानने को प्रस्तुत नहीं थी। वह सोचते थे कि वह उसी वर्ष किसी समय बाइबिल का अनुवाद-कार्य पूरा कर लेंगे और तब अँग्रेजी-हिन्दी कोश का परिवर्द्धन आरंभ करेंगे। वह जीवन की संध्या में तुलसी-संबंधी अपने चिंतन को पूरे विस्तार से शब्दबद्ध करना चाहते थे, किन्तु जून के अंत में उन्हें गैंग्रीन हो गया। यद्यपि उनका इलाज माण्डर;(राँची) और कुर्जी ; (पटना) अस्पताल में हुआ, किन्तु उनकी हालत सुधरने के बजाय बिगड़ती ही गयी। ८ अगस्त को वह पटना से दिल्ली ले जाये गये, जहाँ 17 अगस्त को सवेरे साढ़े आठ बजे उनकी मृत्यु हो गयी। उनका दफन दूसरे दिन दिल्ली के निकॉल-सन कब्रगाह में उनके स्नेहियों और मित्रों की उपस्थिति में कर दिया गया। फ़ादर बुल्के आज जीवितों के देश में नहीं हैं, लेकिन वह अपने हजारों-हजार प्रशंसकों के हृदय में अब भी जीवित हैं। वस्तुत वह एक ऐसी महान् आत्मा थे, जिसकी स्मृति शताब्दियों तक बनी रहेगी और जिसके कृत्तित्व का महत्व दिनों - दिन बढ़ता जायेगा ।

बुल्के साहित्य की कुछ झलकियाँ

1.The Saviour : The four Gospels in one Narrative; Catholic Press , Ranchi,1942
२. मुक्तिदाता (द सेवियर का अनुवाद), काथलिक प्रेस, राँची. १९४२
३. The Theism Nyaya - Vaisheshilka; Oriental Institute , Calcutta, 1947
४. रामकथाः उतपत्ति और विकास , हिन्दी परिषद इलाहाबाद, १९५०
(मलयालमा अनुवाद ; अबयदेव ; साहित्य अकादेमी, त्रिचूर, १९७८)
५. A Technical English - Hindi Glossary ; Daharmik Sahitya Samiti , Ranchi,1955
6. Hindi Christian Names (Compiled and edited jointly by R.P . Sah, S.j.,S.N. Wald, S.V.D.
7.The Ramyan of Hinduism: A course by letters: Manglore, 1958
लूई की अमर कहानी ; धार्मिक साहित्य समिति , राँची, १९५८
(मराठी अनुवाद : जे बेरानको पुणे , १९५९)
८. नील पक्षी (मरिस मैंटरलिंक के फ्रेंच नाटका का अनुवाद) बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना , १९५९
९.पर्वत– प्रवचन (सरमन आन द माउन्ट का अनुवाद); काथलिक प्रेस राँची, १९५९
१०. संत लूकस के अनुसार येसू ख्रीस्त का पवित्र समाचार, काथलिक प्रेस, राँची १९६३
११. अंग्रेजी – हिन्दी कोश ; काथलिक प्रेस , राँची, १९६८
१२. चारों सुसमाचार : काथलिक प्रेस राँची , १९७०
१३. प्रेरित चरित, धार्मिक साहित्य , राँची , १९७३
१४. हिन्दी बाइबिल : न्यूटेस्टामेंट , काथलिक प्रेस , राँची १९७७
१५.रामकथा और तुलसीदास , हिन्दुस्तान एकेडेमी, इलाहाबाद, १९७८
१६.मानस कौमुदी, अनुपम प्रकाशन , पटना, १९७९
१७. ईसा – जीवन और दर्शन , सस्ता साहित्य मंडल , दिल्ली १९८२
१८.पवित्र बाइबिल ; हिन्दी साहित्य समिति , इलाहाबाद , १९८६
१९.बाइबिल के तीन लघु उपन्यासः अनुपम प्रकाशन पटना, १९८७

इसके अतिरिक्त ईसाई धार्मिक पाठ साहित्य की दस पुस्तकें और ईसाई धार्मिक विधि साहित्य की दो पुस्तकें उनके द्वारा अनूदित हुई हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य पर दो पुस्तिकाएँ हिन्दी में और एक अंग्रेजी में।

निबन्ध संग्रह
: १. मंथन : सम्पादक : डॉ. भूपेन्द्र कलसी , बिहार ग्रन्थ अकादमी , पटना , १९९६
राम कथा और हिन्दी : एक इसाई की आस्था , रामकथा सम्पादक डॉ. दिनेश्वर प्रसाद ,
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, २००५
साठ के लगभग निबंध
– विविध विषयों पर, जिनमें रामकथा, तुलसी हिन्दी भाषा और साहित्य – विषय प्रमुख हैं। सैंतीस रेडियो वार्ताएँ , चार साक्षात्कार उपलब्ध।

एक पत्र

प्रिय डॉ. दिनेश्वरजी,

आपने बड़ी कृपा की मुझे पत्र भेज कर, जो मुझे फादर राजू के हाथ मिला। पत्रोत्तर में विलम्ब के लिये क्षमाप्रार्थी हूँ।

स्वर्गीय फादर बुल्के उन थोड़े से लोगों में हैं जो स्मृति में कभी दिवंगत नहीं होते - उनका सौम्य प्यारा, दुबला-पतला चेहरा, खसखसी दाढ़ी, स्वभावत: मैत्रीपूर्ण संयत व्यवहार, उनकी कार्यनिष्ठा, उनकी सच्ची आस्था, उनके ईसा मसीह जिनमें हमारे 'राम' भी झलकते हैं, उनकी सहज सेवापरायणता, बीमार और दुखियों से उनका पारिवारिक - जैसा हार्दिक लगाव और उनकी सेवा-सुश्रूषा के लिए मीलों तक साईकिल से चक्कर लगाना। सन् 1967-68 में जब मैं उनसे मिला था, मैंने देखा था, अधेड़ वय से कुछ अधिक होने पर भी कैसा युवाओं-जैसा उनमें उत्साह था। यह सब मेरे हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ गया है।

वे मेरे एक बहुत अच्छे हार्दिक विद्वान् मित्र, डॉ. रघुवंश के बहुत घनिष्ठ और हार्दिक विद्वान् मित्र थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उनके हिन्दी शिक्षाकाल में रघुवंश-जैसे चिंतनशील साहित्यिक विद्वान् मित्रों के संपर्क और स्वयं उनकी अपनी ; 'एडवांस्ड' साहित्यिक सुरुचि, लगन और अनथक श्रम ने उन्हें हिन्दी साहित्य में दीक्षित किया था, विशेषकर भक्ति साहित्य और रामचरितमानस के अनेक गूढ़ तत्त्वों में। अगर मैं यह कहूँ कि भारतीय परिवेश में रामचरितमानस उनके लिए बाइबिल के न्यूटेस्टामेंट का दर्पण बन गया था, तो शायद मैं बहुत गलत न हूँगा।

राँची की एक गोष्ठी में एक बहुत सुंदर कथा उन्होंने सुनायी थी, जो मुझे कभी नहीं भूलेगी। एक बहुत मार्मिक कथा। कथा संक्षेप में यों है।

पूर्व काल में एक बार कुछ प्रसिद्ध ईसाई -धर्म-प्रचारक निर्जन से टापू में उतरे। वहाँ कुछ मास रह कर उन्होंने वहाँ के भोले-भाले वनवासियों को ईसा मसीह की शिक्षा में दीक्षित कर दिया, टापू के निवासी पूर्ण रूप से मसीह के प्रति आस्थावान हो गये। अपना कार्य समाप्त समझ कर धर्म-प्रचारक वहाँ से चल पड़े। अभी उनका जहाज तट से थोड़ी ही दूर गया होगा कि उन्होंने क्या देखा कि एक वनवासी उनकी ओर लहरों पर दौड़ता हुआ चला आ रहा है। वह पास आकर आग्रहपूर्ण स्वर में चिल्ला कर बोला, "गुरुजी, जरा रुकिये, रुकिये, आपने जो प्रार्थना हमें सिखायी थी, उसका एक अंश हमें फिर से सही-सही समझा दीजिये।" प्रचारकों के मुखिया ने कहा "भाई, तुम्हें किसी भी प्रार्थना या दीक्षा की आवश्यकता नहीं है। तुम अपनी आस्था के बल पर स्वयं ईसा मसीह के निकट पहुँच चुके हो। तुम्हारी शुद्ध, आत्मा जैसा ठीक समझती है, वही ठीक है। तुम आश्वस्त हो कर वापस जाओ। तुम्हें किसी दीक्षा की आवश्यकता नहीं। तुम धन्य हो। हम तुम्हें प्रणाम करते हैं।"

विक्रम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के वरिष्ठ छात्र फादर राजू की कृपा से मुझे बुल्केजी का बाइबिल का अनुवाद देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जो प्रति उन्होंने मुझे दी, उसका अधिकांश भाग मैं कई बार पढ़ गया। इतने सुंदर अनुवाद की कल्पना कठिनता से कर सकता था। खुद मेरी छिपी हुई महत्त्वाकांक्षा रही है कि मैं बाइबिल के कुछ थोड़े-से चुने हुए स्थलों का साहित्यिक अनुवाद करूँ। केवल अपनी साहित्यिक रचनात्मक मानसिक शान्ति के लिए। अभी तक हिन्दी में जो अनुवाद उपलब्ध रहा, उसकी ए क प्रति कभी मेरे पास भी हुआ करती थी। - वह कुछ भी हो - साहित्यिक तो नहीं ही था और शायद उसकी हिन्दी को अच्छी हिन्दी भी नहीं कहा जा सकता था। बुल्के जी ने अपना अनुवाद कार्य ऐसी सतर्कता और निष्ठा भावना से किया है और इतना डूब कर किया है, और वह अच्छे गद्य का मर्म इतनी अच्छी तरह समझते थे कि फलस्वरूप हमारे हाथों में अब जो अनुवाद आया है, वह सचमुच आँखों से लगा लेने के काबिल है -केवल इसीलिए नहीं कि वह एक पवित्र ग्रन्थ है, बल्कि इसलिए भी कि वह इतना प्रवाहमय, सरस और हृदय को छूनेवाला है कि मन तृप्त हो जाता है। मूल यूनानी से किया गया एकदम प्रामाणिक अनुवाद तो वह है ही। मैंने इस अनुवाद के अनेक खण्ड कई बार पढ़े और उन्हें फिर पढ़ने को मन होता है। ईसा मसीह का पूरा शहीदी चरित्र आँखों के सामरे साकार हो उठता है। कैसी घोर-विरोधी परिस्थितियों में कठमुल्ला, ढोंगी, पाखंडी तथा कथित धर्माचारियों के समक्ष मसीह की खरी शुद्ध आत्मा सूर्य के प्रकाश की तरह चमकती है। हिन्दी पाठक के लिए यह सब एक अत्यंत सफल अनुवाद के कारण ही संभव हुआ है। मेरी बड़ी इच्छा थी कि इसी संदर्भ में बुल्केजी को एक पत्र लिखता और अपनी कुछ जिज्ञासाओं को उनके सम्मुख रखता। पर एक तो मैं इस अनुवाद को अभी और कई बार पढ़ जाना चाहता था और मेरी जिज्ञासाएँ बहुत महत्त्व न रखती थीं, वह केवल एक साहित्यकार की शैलीगत जिज्ञासाएँ थीं, और कुल मिलाकर यह मुझे कहीं-न-कहीं कुछ धृष्टता-सी लगती थी।

एक बार यूनानी भाषा सीखने का बाल प्रयास करते हुए एक पाठ में बाइबिल के उद्धृत अंश पढ़कर तीव्र इच्छा हुई थी कि इस आध्यात्मिक ग्रंथ का आस्वादन तो मूल में ही किया जाये, तभी संतोष हो सकता है। वह साध तो पूरी नहीं हुई, मगर बुल्के जी का हिन्दी अनुवाद भी लगभग मूल को ही पढ़ने-जैसा सुख और संतोष देता है। फादर कामिल बुल्के का अंग्रेजी हिन्दी कोश इतना प्रामाणिक और सहज उपयोगी है कि प्राय: स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थी और अध्येता उसी का सहारा लेते पाये जायेंगे।

ऐसा ही लोकप्रिय और ख्यात उनका शोध-ग्रंथ रामकथा है। इसमें देश देशांतर में फैली रामकथाओं का सुंदर शोधपूर्ण आकलन हुआ है। आज सभी विश्वविद्यालयों में इसका अध्ययन महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अस्तु।

आज का हिन्दी जगत फादर बुल्के को अपने आधुनिक साहित्य मनीषियों के बीच हृदय से प्रतिष्ठित कर चुका है। ऐसे कर्मठ, सहृदय, उदारचेता साहित्य और समाज सेवी को कोई भी देशकाल सहज ही विस्मृत नहीं कर सकता।

यह बड़े हर्ष की बात है कि बुल्के जी का संपूर्ण लिखित कार्यकलाप एक ग्रंथावली के रूप में सम्पादित हो रहा है। दिवंगत साधक के प्रति यह सबसे अच्छी, उपयुक्त और सार्थक श्रद्धांजलि है।

आपका - शमशेर बहादुर सिंह

(बैठे हुये अंत में शमशेर बहादुर सिंह)

बीसवीं शताब्दी का ऋषि

- डॉ. पूर्णिमा केडिया 'अन्नपूर्णा'

कुछ अनुभूतियाँ ऐसी होती हैं, जिन्हें शब्दों में बाँधना कठिन है। डॉ. कामिल बुल्के का आशीष भी एक ऐसा ही अनुभव है, जिसे अभिव्यक्त करना मेरे लिए असम्भव-सा है। उनके पुस्तकालय से पुस्तकें लेने के बाद विदा के वक्त जब मैं उन्हें प्रणाम करती, तब कभी-कभी वे सिर पर अपना वरद हस्त रख देते, उस समय एक ऐसा अलौकिक एहसास मन-प्राणों में घुल जाता, एक ऐसी प्रसन्नता रगों में दौड़ने लगती, जिसके लिए शब्द मुझे न तब मिले और न अब।

उस महान आत्मा बुल्के जी के प्रथम दर्शन मुझे श्रीमती मंजु चौधरी, पूर्व व्याख्याता, योगदा कॉलेज, राँची के सौजन्य से हुए। वह अक्सर बाबा के पुस्तकालय से उपन्यास, कहानी संग्रह आदि लाया करतीं। किसी अच्छी पुस्तक की चर्चा करतीं, तो मैं भी उनसे वह पुस्तक लेकर पढ़ती। उन्होंने बतलाया कि फादर के पास हिन्दी साहित्य से संबंधित पुस्तकों का अगाध भंडार है। उन दिनों मैं हिन्दी 'प्रतिष्ठा' की छात्रा थी। सुनकर उनसे मिलने, उनका पुस्तकालय देखने और कुछ पुस्तकें पढ़ने के लिए मन ललक उठा। उनके साथ बाबा के यहाँ जाने का कार्यक्रम बना। मन में थोड़ी घबराहट थी। उनसे मेरा परिचय नहीं, पता नहीं वे मुझे पुस्तकें देंगे या नहीं पर पुस्तक दें या न दें इस बहाने उनके दर्शन तो हो जायेंगे, मन में यही संतोष था।

एक रोज दिन के ग्यारह बजे हम दोनों फादर के दरवाजे पर थीं। फादर विभिन्न पुस्तकों से सजे अपने पुस्तकालय के मध्य में मेज पर झुके अध्ययन में तल्लीन थे। कुछ विद्यार्थी अलमारियों में से पुस्तकें छाँट रहे थे और कुछ अध्ययनरत थे। मैंने झिझकते हुए प्रवेश किया। मंजु जी ने प्रणाम किया, साथ ही मैंने भी। बाबा ने हम दोनों के सिर पर अपने दोनों हाथ रख दिये। पहली बार लगा, जैसे किसी दैवी शक्ति ने मस्तक पर हाथ रख दिया हो। मन में एक अभूतपूर्व स्निग्धतापूर्ण शान्ति व्याप्त हो गयी।

मंजु जी मेरा परिचय करवातीं, इसके पहले ही फादर ने पूछा, "क्या आप भी प्रोफेसर हैं?"

मंजु जी ने हँसते हुए कहा, "नहीं, अभी तो मारवाड़ी कॉलेज में पढ़ रही हैं, पर आपके मुँह से निकला है तो प्रोफेसर भी बन जायेंगी।"

हम तीनों ही हँस रहे थे। बाबा की उजली दाढ़ी से घिरी हँसी में एक अद्भुत सौम्य आभा थी। अनजाने में ही उनके द्वारा की गई प्रोफेसर बनने की भविष्यवाणी एक दिन सच हो जायेगी, यह उस समय कौन जानता था। हठात् मंजु जी के पट्टी बँधे हाथ पर बाबा की दृष्टि पड़ी। वे मुस्कराते हुए बोले, "क्या घर में महाभारत हुआ है?" मंजु जी ने हँसते हुए कहा, "नहीं फादर, यों ही थोड़ी-सी चोट लग गयी है।" फादर का हास्य हमारे चेहरों पर उतर आया था। मुहावरेदार भाषा में फादर का सहानुभूतियुक्त विनोदी स्वभाव मुझे अभिभूत किये जा रहा था।

उसी समय वहाँ एक महिला ने एक आठ-नौ साल की बच्ची के साथ प्रवेश किया। बाबा ने उन दोनों को भी अपना आशीर्वाद दिया। महिला ने बताया कि बच्ची अक्सर बीमार रहती है, इसीलिए उसकी पढ़ाई-लिखाई ठीक से नहीं चल पाती। बाबा ने बच्ची की पीठ थपथपाते हुए कहा, "खूब हँसा करो। तुम्हारी तीन-चौथाई बीमारी तो हँसने से ही ठीक हो जायेगी।" उनका हँसता हुआ चेहरा देखकर बच्ची भी हँसने लगी और उसका बीमार चेहरा खिल उठा। उम्र अधिक हो जाने के बावजूद, इतना अधिक परिश्रम करने और स्वस्थ रहने का रहस्य शायद उनके हँसने-हँसाने के स्वभाव में ही छिपा था।

देर तक बाबा हँसते-हँसाते रहे। फिर उन्होंने न केवल मेरी इच्छित पुस्तकें दीं, अपितु कुछ अन्य उपयोगी पुस्तकें भी दीं। साथ ही हँसते हुये कहा कि लड़कियों को पुस्तकें देने से भी कोई खतरा नहीं है, क्योंकि वे पुस्तकें लौटा देती हैं, जबकि कुछ लड़के पुस्तकें लौटाने के बजाय पचा जाते हैं या उनके उपयोगी पन्ने निकालकर रख लेते हैं। वे लड़कों को एक बार में एक माह के लिए दो पुस्तकें देते थे, जबकि लड़कियों को चार।

फिर हम प्रसन्नता भरी मुस्कान सहित उनका आशीर्वाद लेकर लौट आयीं। हृदय में एक अद्भुत शान्ति व्याप्त थी।

उसके बाद से बाबा के सुखद दर्शनों का क्रम जारी रहा। वे फुर्सत में रहते, तो स्वयं ही पुस्तकें निकालकर दे देते, नहीं तो कह देते, 'जाओ, अमुक कमरे की अमुक आलमारी के अमुक खाने में अमुक ओर वह पुस्तक होगी, ले आओ।' उनकी स्मरण-शक्ति इतनी तेज थी कि हजारों पुस्तकों की स्थान-तालिका उनके दिमाग में सुरक्षित थी।

धीरे-धीरे उनके स्नेह और अपनत्व-भाव ने मन की झिझक दूर कर दी। एक दिन मैं अपनी पड़ोसन के पुत्र को लेकर उनके यहाँ पहुँची। उसने मैट्रिक पास किया था और संत् जेवियर्स कालेज में अपना प्रवेश करवाना चाहता था। बाबा ने उसकी अंक-तालिका देखी। फिर बोले, "प्रथम श्रेणी तो है, लेकिन संत् जेवियर्स के हिसाब से अंक कम हैं। मेरे कहने से भी ये लोग तो लेंगे नहीं। दूसरे किसी अच्छे कॉलेज में ले लेंगे इसे।"

लड़का चला गया, तो मुझसे बोले, "मुझे खुशी है कि तुममें परोपकार की भावना है।"

स्नाकोत्तर एम.ए. के अध्ययन के दौरान न केवल पुस्तकें लेने, वरन् मन की अशान्ति दूर करने के लिए भी मैं और मेरी सहेलियाँ उनके सान्निध्य में जा बैठती। उनका आशीर्वाद और उन्मुक्त हास्य सांसारिकता की कड़वाहट पलों में मन से भगा देता, इसका अनुभव हमने कई बार किया था। उनका हाथ मस्तक पर पड़ते ही मन पर ऐसा प्रभाव पड़ता कि हिन्दी विभाग पहुँचकर अपने प्राध्यापकों के लिए भी मुँह से 'फादर' संबोधन निकलने लगता था। उनके दर्शन की दिव्यता सदा हमारे लिए गूँगे का गुड़ ही रही।

एम.ए. करते वक्त एक आवश्यक पुस्तक बाजार में अनुपलब्ध थी। मैं और प्रतिभा पण्डा, हम दो सहेलियाँ मिलकर साथ परीक्षा की तैयारी कर रही थीं। हमने योजना बनायी कि वह पुस्तक बारी-बारी से फादर से लेकर नोट्स बना लेते हैं। एक महीने के लिए पुस्तक प्रतिभा ने ली और दूसरे महीने मैंने। तीसरे महीने फिर प्रतिभा ने पुस्तक लेनी चाही, तो फादर नाराज होकर अंदर जाकर बैठ गये। हमें अपनी गलती समझ में आ गयी। हमें केवल अपनी पढ़ाई का ध्यान था, किन्तु बाबा को अन्य सभी

परीक्षार्थियों की चिन्ता थी। हमने अंदर जाकर उनसे माफी माँगी। उनका रूठना-मनना भी क्षणिक था। वे फिर तुरंत ही हँसने-हँसाने लगे।

परीक्षा से पहले मैं उनसे मिलने गयी, तो बोले, "सभी प्रश्नों के उत्तर लिखना। किसी भी प्रश्न का उत्तर छोड़ना मत।"

मैंने कहा, "फादर, मैं तो अधिक जल्दी नहीं लिख पाती, इसी कारण कभी-कभी कोई उत्तर छूट जाता है या बहुत छोटा हो जाता है।"

वे बोले, "बहुत बड़े-बड़े उत्तर लिखने की ज़रूरत ही क्या है? जितना भी बड़ा उत्तर लिखो, बीस में से बाहर-तेरह नम्बर से ज्यादा तो मिलने वाले नहीं। इसलिए मुख्य-मुख्य बातें छोटे-छोटे उत्तरों में भी लिख सकती हो। सब उत्तरों को समान समय और समान महत्त्व दो।"

उस दिन से मैं समय के अनुपात का ध्यान रखकर उत्तर लिखने का अभ्यास करने लगी।

एम.ए. करने के बाद अचानक मन में इच्छा जागी कि फादर की चरण-धूलि से अपने घर को पवित्र करूँ। मैं लगातार फादर से आग्रह करती रही और एक दिन मेरी जिद्द पर बाबा को मेरे यहाँ आना ही पड़ा। अल्पाहारी बाबा ने बहुत हल्का-फुल्का सादा खाना खाया, पर अपनी विनोदी शैली में प्रशंसा के पुल बाँध दिये, "क्या इतना ही अच्छा खाना तुम रोज अपने पति को खिलाती हो?... खिलाती ही होगी, तभी तो ये इतने स्वस्थ हैं।"

बाबा ने मेरे दोनों बच्चों को अपने अगल-बगल बैठा लिया था और उनसे तरह-तरह के मनोरंजक सवाल पूछ रहे थे। बच्चे खुशी से विभोर थे। अचानक बाबा ने मुझसे प्रश्न किया, "तुम स्वयं हिन्दी-प्रेमी होकर भी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में क्यों पढ़ा रही हो?. . . जानती हो, अपनी भाषा की जड़ें मनुष्य में बहुत गहरी होती हैं। अपनी भाषा के माध्यम से मनुष्य जैसा ज्ञान प्राप्त कर सकता है, वैसा अन्य भाषा के माध्यम से नहीं।"

अपना उदाहरण देते हुए उन्होंने बतलाया कि जब वे अंग्रेजी-हिन्दी कोश का निर्माण कर रहे थे, तो जहाँ उन्हें कठिनाई होती, वहाँ उन्हें अपनी भाषा के शब्दों से सहारा मिलता था।

अपनी ग़लती के लिए मेरे मन में एक अनजानी पीड़ा व्याप्त हो गयी थी। लगा, यह अंग्रेजी एक ऐन्द्रजालिक मोहपाश की तरह हमें बाँधे हुए है, जिसके कारण हम अपनी भावी पीढ़ी को स्वभाषा के संस्कारों से काट रहे हैं।

एक बार एक महिला अपनी किशोरी पुत्री को लेकर उनके यहाँ आयीं। बोलीं "बाबा ! खुशखबरी है। इसकी शादी तय हो गयी है!"

यह खुशखबरी सुनकर बाबा खुश होने के बदले दु:खी हो गये। बोले, "अभी तो यह बच्ची है। अभी इसे पढ़ने-लिखने दो। अभी मत करो इसका ब्याह।"

"लेकिन बाबा, अब तो सब कुछ तय हो चुका है।"

वे दोनों प्रणाम करके चली गयीं। बाबा चुपचाप उदास से बैठे रहे।

कभी-कभी आगन्तुकों का सिलसिला लगातार चलता रहता। वे थक-से जाते। तब धीरे से कहते, "आज तो ताँता लग गया है।"

यह मेरा सौभाग्य है कि वे मेरे शोध-गुरु बने। 'हिन्दी रामकाव्य में नारी' विषय पर उनके निर्देशन में पीएच .डी के लिए कार्य करते हुए एक बार मैं उनके यहाँ अपने पति के साथ गयी। आशीर्वाद के साथ-साथ बहुत सारी पुस्तकें भी मिलीं। पुस्तकें देते हुए बाबा ने इनसे कहा, "इतनी पुस्तकें ले जाती है यह। आपका बहुत सिर खाती होगी। घर का काम तो क्या करती होगी?" बेटी की त्रुटियां गिनाने की इस पितृ-वत्सलता ने मेरे मन को अद्भुत आह्लाद से भिगो दिया। इनको फादर बड़े स्नेह के साथ एक नववर्ष की डायरी दे रहे थे।

हिन्दी के अध्येयताओं, विद्वानों और शोध-छात्रों के लिए तो फादर का पुस्तकालय कल्पवृक्ष के समान इच्छापूरक रहा ही है। अन्य विषयों के शोध-छात्रों को भी बाबा हर संभव सहायता देने की कोशिश करते। मेरे महाविद्यालय की अंग्रेजी विभागाध्यक्षा को अपने शोध के सिलसिले में कुछ दुर्लभ पुस्तकों की जरूरत थी। मेरी सलाह पर वे मेरे साथ जाकर फादर से मिलीं। कुछ समय लगा, पर बाबा ने न जाने कहाँ-कहाँ के पुस्तकालयों को पत्र लिखकर वहाँ से उनके लिए वे पुस्तकें मँगवा ही दीं। मेरे ही कॉलेज के इतिहास विभाग की अध्यक्षा को अपने शोध-कार्य के लिए राँची के गिरजाघर देखने थे। बाबा ने अपने साथ ले जाकर उन्हें इन ऐतिहासिक-आध्यात्मिक स्थलों की बारीकियों से परिचित कराया। अपने हृदय-स्थित इस सहायता-ममता के बारे में पूछने पर एक बार उन्होंने बतलाया था कि यह उन्हें अपनी माँ से विरासत में मिली है।

व्याख्याता बनने के बाद अनेक शिक्षक-शिक्षिकाओं से परिचय हुआ। फादर के यहाँ जाती, तो अक्सर कोई-न-कोई परिचित मिल जाता। एक बार मैं बाबा से पुस्तकें ले रही थी कि सामने के कमरे में बैठकर कुछ पढ़ते हुए एक परिचित प्रोफेसर ने मुझे देखा। वे वहीं से जोर-जोर से बोलकर मुझसे बातें करने लगे। मैं 'हूँ-हाँ' कर रही थी। बाबा मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। फिर धीरे से मुझसे बोले, "लोग दूसरों के घर आकर कितने जोर-जोर से चिल्लाते हैं।" मैं भी मन-ही-मन हँसने लगी।

बाबा के जन्म-दिवस पहली सितम्बर को मैं नियम से उनके यहाँ जाया करती। वे उस दिन खूब प्रसन्न मुद्रा में रहते और मिठाई खिलाते।

एक बार पुस्तक लेने गयी, तो उनके लिए कुछ फल ले गयी। उन्होंने वे रख तो लिए, पर बोले, "अब पीएच.डी. होने तक ये सब कुछ नहीं लाना है।"

पर किसे पता था कि मेरे शोध-प्रबंध पर हस्ताक्षर करने के बाद वे हमें चिर-विदा कह देंगे। गैगरीन... माण्डर अस्पताल... पटना . . . फिर दिल्ली। रेडियो से खबरें सुनते समय अचानक वह दु:ख समाचार सुना तो स्तब्ध रह गयी। मेरे पति की आँखों से भी आँसू बह रहे थे। प्रार्थना-सभा में सबकी आँखें गीली थीं। राँची वासियों को यह पीड़ा अधिक सता रही थी कि वे उनका अंतिम दर्शन भी नहीं कर सके। दिल्ली में ही उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया था, जबकि बाबा राँची की जमीन में ही चिर-निद्रा-लीन रहने की बात कहा करते थे।

जन्म और मृत्यु के बीच के सत्कर्म ही तो जीवन की सार्थकता तय करते हैं। उन्होंने परोपकार करना और पुस्तक-धन

जोड़ना ही जीवन का परम पुरुषार्थ समझा, तभी तो राँची का 'डॉ. कामिल बुल्के शोध-संस्थान' आज भी हिन्दी-जगत् के लिए कामधेनु बना हुआ है। उनका यूरोप से आकर भारत में बसना और भारतीय कहलाने में गर्व महसूस करना यह बतलाता है कि महादेशों और देशों के बीच की दीवारें नकली हैं, सारे पृथ्वीवासी एक ही कुटुम्ब के सदस्य हैं। उनका जीवन धार्मिक एकता की भी मिसाल है। तभी तो वह ईसा का पुजारी रामकथा का अद्वितीय अन्वेषक बन गया। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि भाषाएँ विभाजक नहीं, वे तो मानव-मानव को जोड़ने के पुल हैं। तभी तो वह फ्लेमिश भाषी अंग्रेजी-हिन्दी का महाकोश रच गया। सचमुच वे ऋषि थे।

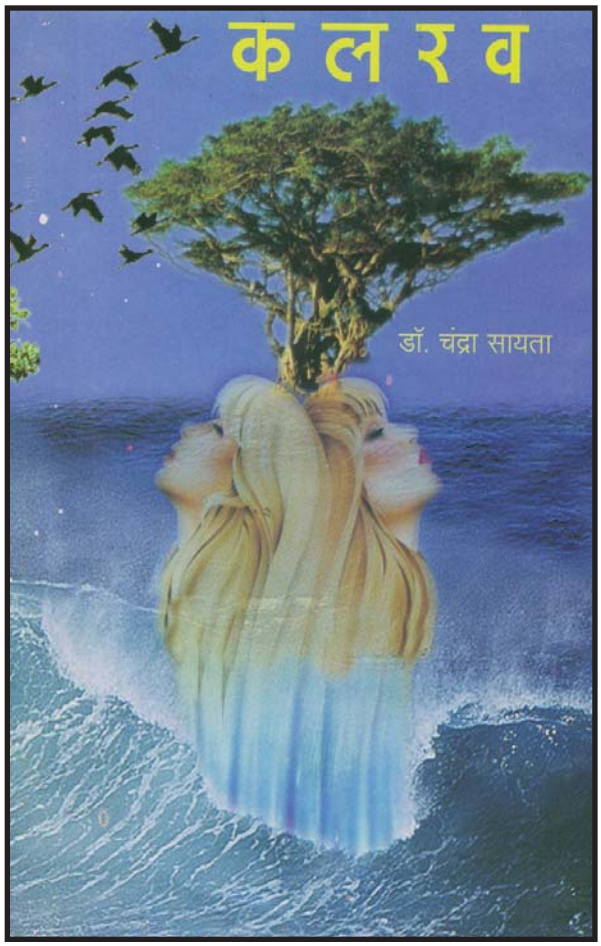

मनुष्यमात्र की एकता

फादर कामिल बुल्के

मैं लगभग दस बरस का था, जब मुझे पहली बार यह अनुभव हुआ कि सब मनुष्य एक हैं। पड़ोस की एक बीस बरस की लड़की क्षय रोग से मर गयी थी। माँ के अनुरोध पर ही मैं उसके दर्शन करने गया। मैं डरते-काँपते हुए उस कमरे में गया, जहाँ वह पड़ी हुई थी। वसन्त का बड़ा सुहावना मौसम था और सूर्य की किरणें बंद खिड़की से हो कर कमरे में प्रवेश कर रही थीं। मृत लड़की पूरी तरह शान्त पड़ी थी। वह पहले-जैसी लग रही थी। वह उन सफेद कपड़ों में पड़ी हुई थी, जिनसे सजधज कर धार्मिक जलूस में कुमारी मरिया की मूर्ति ढोया करती थी। वह कितनी सुंदर लग रही थी! वह ऐसी लग रही थी, मानो मेरे आँख गड़ा कर देखने के कारण कुछ-कुछ शरमा रही हो। "मैं यहाँ क्यों नही रह सकता?" - मैंने अपनी माँ से पूछा, जब वह मुझे अपने साथ ले जाना चाह रही थी। मैं बैठ गया था, जिससे मैं उस लड़की को पूरे इत्मीनान से देख सकूँ। मुझे ऐसा लगा, मानो मैं अपने घर में हूँ। मुझ पर एक मौन शोक छा गया था, एक ऐसा शोक, जिससे मैं पूरी तरह परिचित नहीं था, एक मनुष्य की असमय मृत्यु के कारण। मैं उस दिन दूसरे दिनों की अपेक्षा कहीं अधिक शांत रहा। मुझे याद नहीं कि मैं उस दिन क्या-क्या सोचता रहा, किन्तु बाद में मैंने अक्सर यही सोचा कि वह मेरी तरह ही एक मनुष्य थी और उसकी तरह मैं भी किसी दिन मर जाऊँगा और यह कि इस दुनिया में हम सबों की नियति एक-जैसी है। मैं कभी यह नहीं समझ पाया कि ए क मनुष्य दूसरे मनुष्य के प्रति इतना क्रूर क्यों हो जाता है : हम सब एक ईश्वर की सृष्टि हैं।

हम एक दूसरे से चिपके हुए परमात्मा की गोद में पड़े थे।
हम अपने सृष्टिकर्त्ता के रहस्य में सोये थे।
हम एक दूसरे से प्रेमियों से भी अधिक समीप थे।
रूपों के आरंभ से पहले हम सब एक थे।
(गेरट्रूड वॉन ले फोर्त)

संन्यास का बीजारोपण सम्भवत: उसी दिन हो गया था।
(1933ई. में जर्मन में लिखित और स्वयं लेखक द्वारा 1980 ई. में हिन्दी में अनुवादित)

मानस मानस में जिनके राम

श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी
अध्यक्ष हिन्दी साहित्य परिषद्, (कैनेडा)

मस्तिष्क पर जब दबाव डालता हूँ तो यादों का कुहासा धीरे-धीरे छंटने लगता है और मेरी आँखों में एक मनोरम चित्र उभरता है। 1956 का वह जून का महीना था एक दिन जब लू के थपेड़े बंद हो गये थे और सूरज ढलान पर था तब मैं अपने मामा श्रद्धेय डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', जो हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान और कवि थे, के घर टैगोर टाउन , प्रयाग गया था। उसी जुलाई से प्रयाग विश्वविद्यालय में मुझे प्रवेश लेना था। वहाँ दालान पर एक अधेड़ उम्र के साधारण कुर्ते पायजामे में अंग्रेज व्यक्ति को मामा जी से बात करते हुये देखा। वे साहित्यिक हिन्दी में फरीटे से बात कर रहे थे। उनकी सौम्यता तथा शिष्टता व्यवहार में झलक रही थी। जीवन में मुझे पहली बार एक अंग्रेज से ऐसी हिन्दी सुनने का अवसर मिला था जिससे मेरा आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक था। मामा जी और वे सज्जन काव्य शास्त्र पर शायद चर्चा कर रहे थे जो उन दिनों मेरी समझ के परे था। जब वे चले गये तो मुझे बताया गया कि वे हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार महाकवि तुलसी के अप्रतिम समीक्षक फादर बुल्के हैं। उस सुखद घटना के बाद उनके विषय में हिन्दी पत्रिकाओं में यदाकदा पढ़ता रहा। कहते हैं कि बेलजियम निवासी फादर बुल्के ने जर्मनी में किसी साहित्यिक अधिवेशन में जर्मन भाषा में महाकवि तुलसी के बारे में पढ़ा और उसी से प्रभावित होकर भारतीय संस्कृति को गहराई से समझने, परखने, अपनाने और 'मानस' के अन्तरनिहित तथ्यों , आदर्शों के विशुद्ध भावना से आत्मसात करने की योजना बनाकर 1935 में भारत आ गये। तुलसी के प्रति उनकी निष्ठा तथा प्रतिबद्धता ने उन्हें न केवल हिन्दी भाषा का अपितु रामचरितमानस का एक अधिकारी विद्वान बना दिया।

वैसे कालजयी महाकवि तुलसीदास के साहित्य के विभिन्न पक्षों में सैकड़ों शोधकर्ताओं ने डाक्टरेट की उपाधियाँ अर्जित कीं और यही नहीं विदेशी विद्वानों जैसे इंग्लैंड निवासी एच.एस. विलसन ने उनके बहुमूल्य योगदान की समीक्षा की नींव डाली, फ्रांसीसी विद्वान गार्स द तासी, एफ. एस. ग्राउस, आहम जाज्र ग्रियर्सन, इटली के डॉ. लुइजपियो तेस्सीतेरी, रूसी प्रोफेसर चेलिशेव एवं ए. वारन्निकोव अथवा लंदन विश्वविद्यालय के डॉ.रूपर्ट स्नेल आदि ने तुलसी साहित्य का अध्ययन और अनुशीलन किया किन्तु 'मानस' में बाबा बुल्के के समान पूरी तरह सराबोर नहीं हुए। बाबा बुल्के के रोम-रोम में राम और सांस-सांस में तुलसी बस गये और यदि ये कहा जाए कि वे तुलसीमय हो गये तो कोई अतिरेक नहीं। यद्यपि वे ईसाई धर्म के अनुयायी थे किन्तु राम और ईसा में कोई भेद नहीं किया। तन से, रंग से विदेशी थे लेकिन मन और मिज़ाज से सच्चे भारतीय। उन्होंने बाइबिल का स्वयं हिन्दी अनुवाद इसलिये किया था कि उनका अंतिम संस्कार ईसाई परंपरा के अनुसार हिन्दी में हो। यह हिन्दी के प्रति उनके अगाध प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है जो अनुकरणीय है।

बाबा बुल्के से जुड़ी स्मृतियों के बंद गवाक्ष खुलते हैं और मैं अपने आप को कानपुर के मोतीझील स्थित 'तुलसी उपवन' में पाता हूँ। मैं सपत्नीक गत नवम्बर दिसम्बर में जब भारत में था तब दिसम्बर के तीसरे सप्ताह एक दिन भयंकर ठंड में उस मनोरम स्थल में गया जहाँ बाबा बुल्के के दर्शन हुये पर इस बार उनकी प्रतिमा के। मेरे मन में एक विचार आया था कि यदि हिन्दी के इस योद्धा पर भारतीय साहित्य और संस्कृति की संपूर्ण संपदा भी न्योछावर कर दी जाए तो वह उनकी निस्पृह सेवा और त्याग पर कम होगी। मैं कविवर हरिवंशराय बच्चन की इन पंक्तियों के साथ श्रद्धेय बाबा बुल्के से विदा लेता हूँ :

फादर बुल्के तुम्हें प्रणाम् !
जन्में और पले योरोप में,
पर तुमको प्रिय भारत धाम।

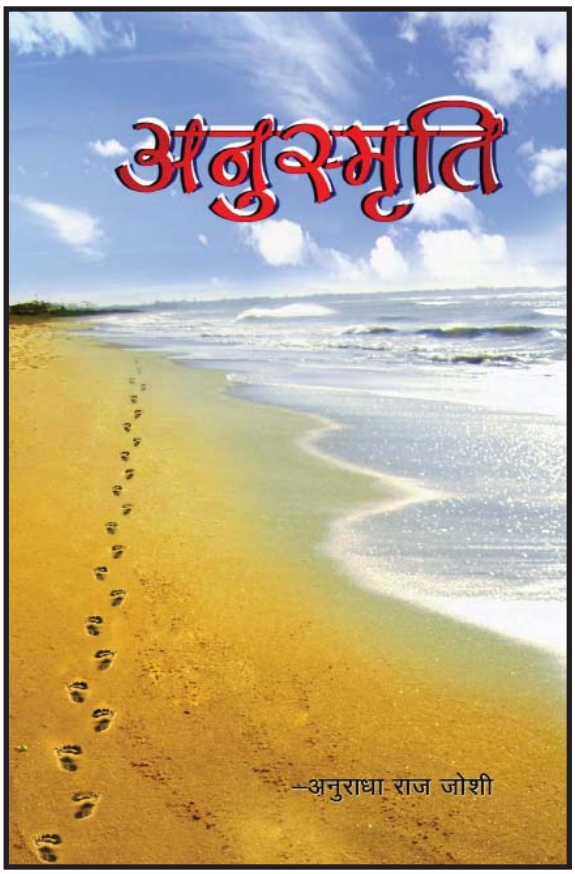

गज़ेले की कुछ कविताएँ

– डॉ. दिनेश्वर प्रसाद

फ्लेमिश भाषा के सबसे लोकप्रिय और फ्लेमिश-भाषी फादर बुल्के के सबसे प्रिय कवि गज़ेले की कुछ कविताएँ। गज़ेले की अन्य अनेक कविताओं की तरह ये कविताएँ भी फादर बुल्के को बचपन से कंठाग्र थीं और उन्होंने न जाने कितनी बार इनका मन-ही-मन या अपने संघ भाइयों के सामने सस्वर पारायण किया था।

इन कविताओं के अनुवाद में गज़ेले के क्रिस्टाईन डी हेन के अँगरेजी अनुवाद से कहीं अधिक सहायता फादर बुल्के से मिली थी। उन्होंने मेरे अनुरोध पर इनका अँग्रेजी अनुवाद किया था और मूल से मेरे हिन्दी अनुवाद की तुलना कर कई संशोधन सुझाये थे।

कितनी सुन्दर है प्रभात की ओस !

कितनी सुन्दर है प्रभात की ओस !
कितने सुन्दर ताजे-ताजे फूल !
कितनी सुन्दर सूर्य-रश्मि जो
काँप रही उस ओस-बिन्दु में !
कितना सुन्दर होगा वह सौन्दर्य
जिसे यहाँ सुन्दरता कहते
'औ जिसमें दीखती
परम सौंदर्य की झलक !

मैं फूल और तुम सूर्य

मैं फूल
और मैं तेरी आँखों के सम्मुख होता विकसित
ओ प्रखर सूर्य-आलोक ! चिरन्तन अविकृत !
जो मुझे नगण्य कृति को
जीवित रखने की अनुकंपा करता
और इस जीवन के पश्चात् मुझे
शाश्वत जीवन प्रदान करता।

मैं फूल
और मैं ऊषा में खिल जाता हूँ
अपनी पंखुड़ियाँ सन्ध्या में मुद्रित करता
ऐसा ही बारी-बारी से तब तक होगा
तब तक ओ सूर्य ! उदित हो कर
तू मुझे अनुज्ञा देगा यह
फिर एक बार मैं जग जाऊँ
या मेरा शीश नींद से अवनत हो जाये।

तेरा प्रकाश मेरा जीवन -
मेरी सक्रियता-निष्क्रियता, मेरी आशा
मेरा उल्लास, अनन्य और सर्वस्व वही।
तेरे अभाव में मैं
मरने के सिवा और क्या कर सकता?
तेरे अतिरिक्त और क्या जिसको प्यार करूँ?

मैं बहुत दूर तुझसे, यद्यपि
तू मधुर स्त्रोत सब जीवन का,
उन सब का, जो जीवन देते
सब से समीपता से तू ही मुझको छूता
प्रीतिकर सूर्य !

मेरे अंतर के अंतर तक
निज सर्वभेदिनी ऊष्मा संचारित करता।
ले चल ! ले चल !
खोल दे सभी पार्थिव बन्धन
मुझको समूल उत्पाटित कर
धरती से कर उच्छिन्न मुझे
जाने दे मुझको वहाँ, जहाँ
हर घड़ी ग्रीष्म औ' सूर्यातप।
जल्दी ले चल तू वहाँ,
जहाँ शाश्वत अप्रतिम सर्वसुन्दर
ओ सूर्य ! स्वयं तू विद्यमान।
वे हों समाप्त, परित्यक्त, शेष
जो हमें परस्पर विलगातीं,
जो गहरा गर्त्त बनाती हैं ;
ऊषा, सन्ध्या -
वे सब, जो हो जातीं व्यतीत,
हो जायें विदा;
अपने स्वदेश में देखूँ मैं
तेरा सीमा-विरहित प्रकाश !

तब मैं सम्मुख . . .
ना ! नहीं केवल तेरी आँखों के सम्मुख,
बल्कि एकदम निकट, पार्श्व में,
बल्कि स्वयं तुझ में ही विकसित हो जाऊँगा,
यदि तू मुझ, तुच्छ कृति को ,
जीवित रखेगा,
यदि देगा प्रवेश ,
निज अविनश्वर प्रकाश में !

बुलबुल के प्रति

बुलबुल ! अब तक
नहीं सुनायी देती हो तुम,
ईस्टर का सूरज
आ पहुँचा है प्रभात में !
इतनी देर कहाँ अटकी हो?
या कि सान्त्वना देना शायद

भूल हो गयी हो?

नहीं ग्रीष्म का लेश, सत्य है,
नहीं अंकुरण - नहीं पत्तियाँ
फूटी हैं बाड़ों में।
हिम के फाहे नभ में,
आँधी का कोलाहल
'औ' वर्षा के झोंके।
तब भी शोर हवा में चारों ओर
तेलियर का, तूती का
कस्तूरे की हँसी और अस्फुट ध्वनि,
गौरैया औ रामगंगरा की आवाज़ें,
पेड़ों में भर रही कूक कोयल की,
चक्कर भरती अबाबील,
है पेंग भर रही, इठलाती है।

इतनी देर कहाँ अटकी है बुलबुल,
सान्त्वना देना शायद भूल गयी है?
नहीं ग्रीष्म का लेश अभी तक,
किन्तु ग्रीष्म आयेगा, निश्चय।
ईस्टर का सूरज
आ पहुँचा है प्रभात में !

मेरा हृदय

मेरा हृदय पुष्प-पौधे-सा,
जो खिलते या मुकुलित होते
सूर्य-रश्मि अंतर में भरता
या मुरझाता और आत्म-पीड़ा सहता है
और टूट कर झुक जाता है।

मेरा हृदय हरे किसलय-सा,
जो ऊषा की ओस साँस में भरता, लेकिन
हो जाता है शक्तिहीन सन्ध्या बेला में -
थका हुआ जीवन से, धूसर,
शोकाकुल, चिन्ता से विह्वल।

मेरा हृदय वृक्ष के फल-सा,
जो छाया में छिपा हुआ बढ़ता-पकता है
जब तक आह ! शरत् का शीतल हाथ वृक्ष से
उसे समय से पहले नहीं चुरा लेता है।

मेरा हृदय पतित-उल्का-सा,
जो नभ की छत से टकरा चिनगारी भरती
औ' जब तक मैं एक साँस लूँ,
उसके पहले जिसकी कौंध मौन हो जाती।

मेरा हृदय इन्द्रधनु-जैसा,
जो ऊँचे नभ में आकार ग्रहण करते ही,
बुझने लगता शीघ्र लाल 'औ नील 'औ हरित,
पीत और बैंगनी रंग से दीपित हो कर।
मेरा हृदय . . .

मेरा हृदय रुग्ण है भंगुर,
सुख-सशंक है,
किन्तु इसे यदि एक घड़ी आनन्द मिले, तो
बहुत दिनों तक निराहार यह रह सकता है।

माँ

यहाँ नीचे धरती पर
न तो तुम्हारा
कोई चित्र
कोई प्रतिकृति
न तो कोई मूर्ति
कोई प्रतिच्छवि शेष है

न तो कोई प्रत्यंकन
न कोई छायाचित्र
न ही पत्थर की
कोई उत्कीर्ण प्रतिमा
सिवा उस अकेली प्रतिमा के
जो तुमने
मुझमें छोड़ी है।

ओह ! मैं तुम्हारे अयोग्य,
उस प्रतिमा को
मलिन न करूँ,
बल्कि वह प्रतिष्ठा से
मुझमें जीवित रहे,
सम्मान से मुझमें मरे !

फिर आया हूँ

बुढ़ापे से क्षीण होते
फाटक के पल्ले
तिरछे लटके हैं
घोड़े की काठियों की तरह
बखार की छत
वहाँ धँस रही हैं
पुआल बत्तों पर पड़ा है
घर और बथान के छप्परों की सन्धियों पर
मिट्टी के दरके हुए ढेले हैं
ढेलों पर फूल उग आये हैं
उनके नीचे
घर के लोग जमा हैं

शान्ति के इतने पुराने
और इतने नये फूल
बाहर फूल
और भीतर फूल !

यही है वह जगह, जहाँ माँ बैठती थी
यहीं पिता को परिश्रम और हृदय मिला था
और वहाँ हाथ जोड़कर
हम बच्चे घुटने टेकते थे
हम छोटे और बड़े
एक साथ प्रार्थना करते थे

अब भी वहाँ वही बेलचा है
वहाँ वही चिमटे हैं
और पहले की तरह
तन्दूर का सायबान
खड़ा है
वहाँ है कुत्ते का कमरा
और . . . बहुत समय
बीत गया है . . .
क्या नाम था उस कुत्ते का?

आह ! वे बीते हुए दिन
मेरे अन्तरतम को
उल्लसित
उत्प्रेरित करते हैं
क्या कोई है
जो यह समझे
ऐ पुराने चक !
कि तू मुझे
कितना विह्वल कर देता है?

सुखी थे तुम
सरल निश्छल लोग !
छोटा था तुम्हारा लोभ
और बड़ा था तुम्हारा हृदय
यदि रोने और चाहने से
आह ! कुछ हो पाता,
तो अब भी मैं
मेज पर बैठ
तुम्हारे साथ
जौ की रोटी खाता !

तुमने एक पर्वत पर....

तुमने एक पर्वत पर
अकेले प्रार्थना की थी ईसा!
और मुझे ऐसा पर्वत नहीं मिलता
जहां मैं इतनी ऊँचाई तक चढ़ूँ
कि तुमको अकेले पा सकूँ!

यह दुनिया वहाँ- वहाँ मेरा पीछा करेगी
जहाँ- जहाँ मैं भागूँगा
या रहूँगा
या मेरी आँखें देखेंगी।
मेरे जैसा कोई भी दीन नहीं
एक भी नहीं
जो कामना करे और शिकायत न करे
जो लालायित रहे और नहीं पा सके
जो पछताये और आह भर न बोले
कि कितनी चुभन होती है।
मुझ दीन मूढ़ को यह सिखाओ
कि तुमसे कैसे विनती करूँ!!

कैसे हो तुम मेरे बच्चे

कैसे हो तुम मेरे बच्चे!
तेज वर्षा झेलते हुये
किसी दिन----------
उसने मुझे शक्ति और गर्व दिया था

उसे पूरी तरह
सहकर पार करते हुये
रास्ता दिखाया था
कैसे हो तुम!

अक्सर जब रात में आँधियाँ
परस्पर मिल कर
विस्तृत आकाश को
मथ रही होती हैं
भय से छाती की धड़कन
बन्द होने लगती है
तो मैं तुम्हारे लिए
चिंतित हो उठता हूँ
तुम कैसे हो अभी?

भले ही तुम
उत्तर या पश्चिम में हो
भले ही दक्षिण या पूरव में
या कि ऐसा हो .....

क्या कभी ऐसा होगा
कि मौसम और आँधी के बावजूद
तुमसे फिर कभी मिल पाऊँगा, बच्चे!

ओ हृदय को हृदय से बाँधने वाले बंधन!
दृढ़
बने रहो
मत टूटो
जब तक कि हम
कब्र में न लेट जायें.....

अभी कैसे हो तुम
मुझे बता दो
मैं उत्सुक हूँ!
अभी कैसे हो तुम?

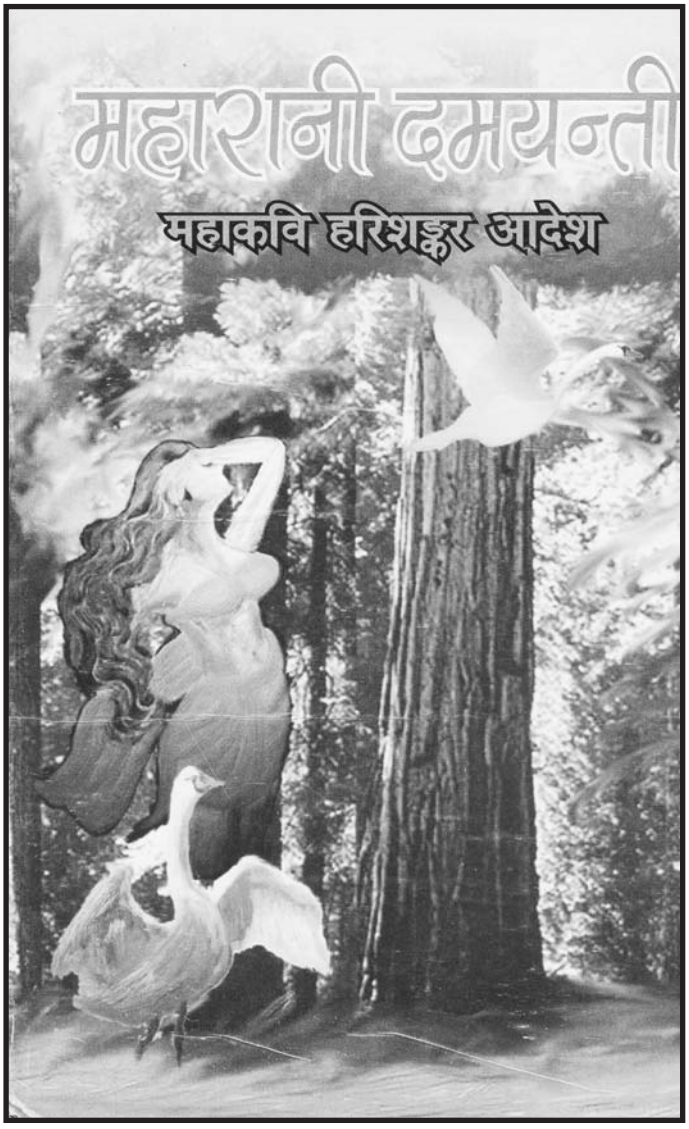

टोरंटो , २२ अप्रैल २००९ हिन्दी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित हास्य कवि सम्मलेन की कुछ झलकियाँ –

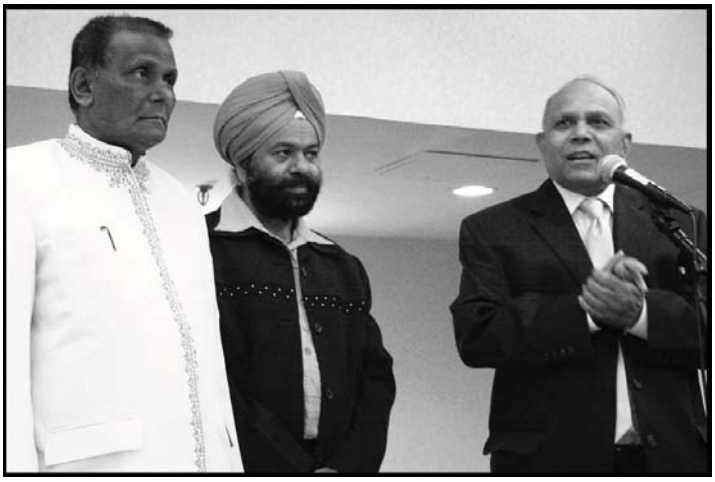

एक महान हिन्दी प्रेमी

लेखक– महाकवि प्रो. हरि शंकर आदेश,
(महानिदेशक, भारतीय विद्या संस्थान,
ट्रिनिडाड एंड टुबेगो,कनाडा,अमेरिका)

हिन्दी के इतिहास में फादर कामिल बुल्के का नाम चिरस्मरणीय है। वे बेल्जियम के वेस्ट फ्लांडर्स के प्रान्त के रम्सकपैले ग्राम में उत्पन्न हुए थे। उनकी कुछ विशेषतायें थीं। उन्होंने अभारतीय होते हुए भी भारतीय दर्शन तथा संस्कृति को सम्मान दिया, अपनाया तथा भारतीयों को उसका महत्व बताया। ईसाई होते हुए भी हिन्दू मान्यताओं की सराहना की। अहिन्दी भाषी हेते हुए भी हिन्दी भाषा की गरिमा को पहचाना , प्यार किया, अपनाया तथा समृद्ध किया। वे लेडी सेंट एनीबेसेंट, सिस्टर निवेदिता तथा मदर टेरिसा की भांति ही विदेश में जन्मे, किसी विशेष उद्देश्य से भारत आए परन्तु भारत के रंग में ऐसे रंगे कि आदर्श भारतीय ऐतिहासिक विभूति बन गए। उन्होंने भारत की नागरिकता भी ले ली।

उनका कथन है कि जब वे भारत आए तो उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि यहाँ के बहुत से शिक्षित लोग अपनी सांस्कृतिक परम्परा से अनभिज्ञ थे, हिन्दी की उपेक्षा करते थे और अंग्रेज़ी में बोलने में एक विशेष गर्व का अनुभव करते थे। उन्होंने निश्चय किया कि वे भारत की जन-भाषा हिन्दी का मन लगाकर अध्ययन करेंगे। उन्होंने अनुभव किया कि यहाँ तो गाँव - गाँव गली-गली में हर व्यक्ति ही एक प्रकार से स्वयं में संत है और देश के कोने-कोने में एक नाम की गूँज है, वह है राम नाम। उन्होनें राम का अध्ययन किया ,राम -कथा का अध्ययन किया।

यहाँ यह कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा कि जिस प्रकार ट्रिनिडाड एंड टुबेगो में कैनेडियन मिशन के मिशनरियों ने हिन्दी भाषी भारतीयों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के लिए अपने हिन्दी - विद् धर्म-प्रचारकों (मिशनरियों) को भेजा था तथा कैनेडियन मिशन के विद्यालय खोले थे, उसी प्रकार फादर कामिल बुल्के का आगमन बेल्जियम से हुआ था। परन्तु फादर कामिल बुल्के एक स्वतंत्र चिन्तक तथा मनीषी भी थे। रामायण विषय पर शोध कार्य करते हुए वे गोस्वामी तुलसीदास जी से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने तुलसी साहित्य का गंभीर अध्ययन किया। यद्यपि वे ईसाई धर्म का उत्तर-दायित्व भली-भांति निभाते रहे परन्तु रामचरित मानस ग्रंथ पढ़कर उनकी मानो विचार धारा ही परिवर्तित हो गई। वे रामचरित मानस के पात्रों के भारतीय दर्शन की विवेचना तथा नैतिक आदर्शों से इतने अधिक प्रभावित हो गए कि उन्हें अनुभव होने लगा कि रामचरित मानस की विचार धारा तथा ईशू मसीह द्वारा दिए गए प्रवचनों में प्रचुर साम्य है।

एक ईसाई धर्म प्रचारक होते हुए भी राम कथा के विद्वान और भक्त बन गए। उन्हें हिन्दी तथा रामायण का एक अधिकारी विद्वान माना जाता है। फादर कामिल बुल्के से मेरी भेंट बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में एक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी के मध्य हुई। उस समय मैं हिमाचल भवन दिल्ली में आयोजित इस संगोष्ठी के उदघाटन सत्र की अध्यक्षता कर रहा था। कार्यक्रम के उपरान्त उनसे कुछ मिनिट व्यक्तिगत वार्तालाप भी हुआ। वे मुझे एक महान संत प्रतीत हुए। एक महान आत्मा लगे। दूर से ही वे बहुत प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी लगते थे। लम्बाई अच्छी थी। सुदर्शन थे। गौर वर्ण था। पूरा व्यक्तित्व भारतीय ऋषि जैसा था। अपने पादरी वेशभूषा में थे, उनके हाथ में एक थैला भी रहता था, जिसमें उनकी महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की सामग्री रहती थी। उनके चरित्र की निर्मलता उनके मुख पर स्पष्ट दिखाई देती थी। मैंने अनुभव किया कि आध्यात्मिकता किसी एक धर्म विशेष की बपौती नहीं है। इसीलिए हमारे समाज में प्राय: सभी संतों, आचार्यों, पीर - औलियाओं तथा मुल्ला - पादरियों आदि महान आत्माओं का सम्मान होता है। फादर कामिल बुल्के एक महान आध्यात्मिक पुरुष थे। बड़े कर्मठ तथा सक्रिय व्यक्ति थे। वे स्वयं को बिहारी (बिहार प्रान्त का निवासी) भारतीय मानते थे।

फादर कामिल बुल्के आजीवन भारतीयों को उनकी अपनी आध्यात्मिक सम्पदा तथा सांस्कृतिक परम्पराओं से पुर्नपरिचित कराने में व्यस्त रहे । भारत सरकार ने उन्हें नागरिकता देकर उन्हें हिन्दी प्रचार प्रसार करने के लिए बनाई गई राष्ट्रीय समिति का सदस्य बनाया। इस क्षेत्र में फादर कामिल बुल्के प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्हें उनकी हिन्दी की महत्वपूर्ण सेवाओं के लिए भारत के सर्वोच्च सम्मानों में से - पद्म भूषण सम्मान से सम्मानित किया गया। उन्होंने यूँ तो बहुत कुछ लिखा परन्तु उनकी पांच पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। मुक्तिदाता (ईशू मसीह की जीवन कथा), न्याय वैशेषिक की आस्तिकता , नया विधान न्यू टेस्टामेंट ; राम कथा उत्पत्ति और विकास; ,बाइबिल का हिन्दी अनुवाद तथा इंगलिश - हिन्दी शब्दकोश । इस शब्द कोश के उनके सामने ही तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। इस में चालीस सहस्त्र शब्दों का संयोजन किया गया था। राम कथा की उत्पत्ति तथा विकास नाम पुस्तक मैंने पढ़ी है, मेरे टोरॉन्टो स्थित निजी पुस्तकालय में सुरक्षित है। उन्होंने तीन सौ रामायणों का संकेत दिया है।

इस हिन्दी के महान सेवक तथा सेनानी का स्वर्गवास दिल्ली में सत्रह अगस्त 1982 को हुआ। फादर कामिल बुल्के ऐसी महान विभूतियों में से एक हैं , जिन्होंने भारत की आत्मा को समझ कर भारतीयों को अपने भूले नैतिक मूल्यों से पुन: परिचित करवाया। पर्याप्त सीमा तक हिन्दुओं तथा ईसाइयों के मध्य सामंजस्य एवं सौहार्द का वातावरण तैयार किया। आज भारत के ब्राउन अंग्रेज़ों को लज्जा आनी चाहिए कि अंग्रेज़ तो कब के चले गए परन्तु अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक , शैक्षिक तथा भाषाई दासता पीछे

छोड़ गए। अन्य प्रसंगों को दूर भी रखें तो भी यहाँ यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि वे ही , सीमित संख्या में अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोग भारत में करोड़ों लोगों पर राज्य कर रहे हैं। सूचना एवं समाचार उद्योग, विज्ञापन, बॉलीबुड के चलचित्र तथा कॉन्वेंट के प्रतिपादक कुछ लोग इंगलिश को उच्च स्तर का प्रतीक बनाकर हिन्दी की खिल्ली उड़ा रहे हैं। हिन्दी अंकों को जीते जी समाधिस्थ कर दिया गया है। अब तो कुछ फॉन्टों में भी हिन्दी अंक नहीं मिलते। अगला प्रयास है, हिन्दी में रोमन लिपि का बढ़ता हुआ वर्चस्व। लिपि भाषा का कलेवर होती है। छब्बीस वर्णों वाली रोमन लिपि बावन वर्णों वाली हिन्दी लिपि का भार कैसे वहन कर सकती है? असंभव है। फादर कामिल बुल्के हिन्दी देवनागरी लिपि के ही समर्थक थे। उन्हें स्वर्गीय अब्दुल कलाम आज़ाद द्वारा प्रतिपादित हिन्दी लिपि रुचिकर नहीं थी। आज भारत तथा भारत से बाहर हिन्दी का बड़ा धूमधाम से प्रचार हो रहा है। हिन्दी दिवस आते हैं जाते हैं, मनाए जाते हैं। करोड़ों रुपए व्यय किए जाते हैं। बस राजनीतिक दिग्गजों की बात छोड़ दें, हिन्दी के कुछ मूर्द्धन्य अधिकारी विद्वान भी हिन्दी के नाम पर हिन्दी - अंग्रेज़ी की खिचड़ी भाषा जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। आज फादर कामिल बुल्के जैसे हिन्दी के कल्याण करने वालों का अभाव होता जा रहा है। हम हिन्दी वालों को फ़ादर कामिल बुल्के से प्रेरणा लेनी चाहिए, पाठ लेना चाहिए कि जिस देश की अपनी भाषा नहीं होती , वह देश अधिक दिन स्वतंत्र , समर्थ और एक नहीं रह सकता। अन्य लिपि में लिखित खिचड़ी भाषा संसार के विस्तृत हिन्दी - समाज को एक सूत्र में बाँधने में समर्थ नहीं हो सकती। मैं बीसवीं सदी में हिन्दी के सच्चे प्रेमी तथा उद्धारक स्वर्गीय फ़ादर कामिल बुल्के को श्रद्धांजलि प्रदान करता हूँ ।

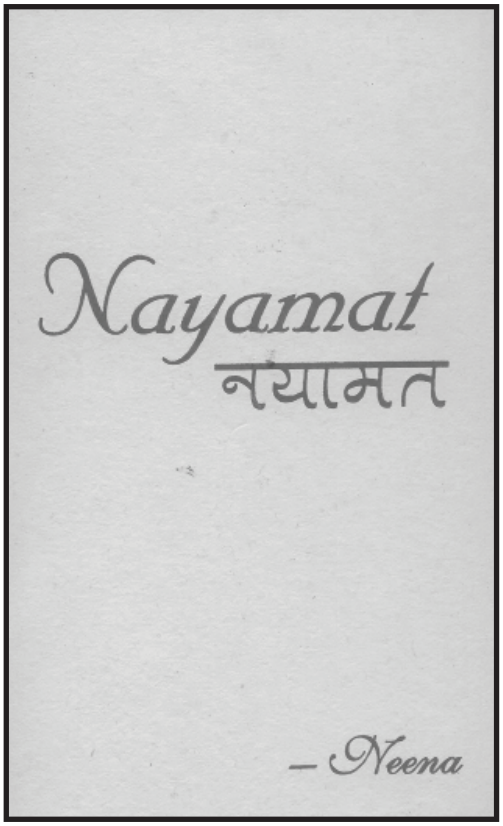

कलाकार अमितकुमार सिंह (भारत)

रामकथा मेरे शोध का विषय क्यों?

डॉ. कामिल बुल्के

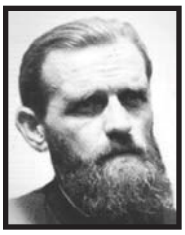

रामचरितमानस में यह लिखा है 'सबहि नचावत राम गोसाई', इसलिए यदि तुलसी से पूछा जाता कि 'रामकथा मेरे ; अर्थात् फादर बुल्के के शोध का विषय क्यों?' तो वह निश्चय ही यह उत्तर देते, 'क्योंकि भगवान् ने उन्हें इसके लिए प्रेरित किया।'

इस विषय में मुझे अपने प्रिय कवि तुलसी का विरोध करने का साहस नहीं है, फिर भी यह निश्चित है कि परमात्मा ने मेरे कान में फुसफुसाकर यह नहीं कहा कि "तुम भारत जाकर रामकथा पर शोध करो", लेकिन भगवान् परिस्थितियों द्वारा भी हमें प्रेरित करते हैं, अत: प्रस्तुत वार्त्ता में सर्वप्रथम इस पर विचार किया जाएगा कि किन परिस्थितियों में मुझे रामकथा पर शोध करने की प्रेरणा मिली।

मुझे लगता है कि इस प्रेरणा का बीज उस समय मेरे हृदय में बोया गया था, जब मैं स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि मुझे किसी दिन भारत आने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

मेरी जन्मभूमि बेलजियम के उत्तर में फ्लेमिश भाषा बोली जाती है और दक्षिण में फ्रेंच भाषा। फ्रेंच विश्व भाषा है,अत: समस्त बेलजियम में इसका बोलबाला था। फ्रेंच विश्वविद्यालयीय तथा उच्च माध्यमिक शिक्षा की माध्यम थी और उत्तर बेलजियम के बहुत से मध्यवर्गीय परिवारों में भी फ्रेंच बोली जाती थी।

इस परिस्थिति के विरोध में फ्लेमिश भाषा का आन्दोलन प्रारंभ हुआ जो मेरे विद्यार्थी जीवन के समय प्रबल होता जा रहा था। मैं भी इस आंदोलन से सहानुभूति रखता था और इकतीस की उम्र में संन्यास लेने तक इसमें सक्रिय भाग लेता रहा।

इस मातृभाषा प्रेम का संस्कार ले कर मैं सन् 1935ई. में राँची पहुँचा और यह देखकर दुख हुआ कि भारत में न केवल अँगरेज़ों का राज्य है, बल्कि अँगरेज़ी का भी बोलबाला है। मेरे देश की भाँति उत्तर भारत का मध्यवर्ग भी अपनी मातृभाषा की अपेक्षा एक विदेशी भाषा को अधिक महत्त्व देता है। इसके प्रतिक्रिया-स्वरूप मैंने हिन्दी पंडित बनने का निश्चय किया। यह निश्चय एक प्रकार से मेरे शोध-कार्य की ओर प्रथम सोपान है।

हिन्दी का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त करने के बाद मैंने हज़ारीबाग में सन् 1938 ई. में साल भर हिन्दी का अध्ययन किया और उसी वर्ष प्रथम बार समस्त रामचरितमानस तथा विनयपत्रिका का परिशीलन किया। इस अध्ययन के सिलसिले में मुझे अयोध्याकाण्ड की पंक्तियाँ पढ़कर अत्याधिक आनन्द का अनुभव हुआ -

"धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू।
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु प्रान सम जाके।।"

बात यह है कि मैं बहुत पहले विश्व-साहित्य विषयक किसी पुस्तक में इन पंक्तियों का जर्मन अनुवाद पढ़कर प्रभावित हुआ था, किन्तु मुझे याद नहीं था कि ये तुलसीदास की पंक्तियाँ हैं। सन् 1938 ई. के उस दिन मुझे लगा कि जिस समय मैं यूरोप में पहली बार ये पंक्तियाँ पढ़कर द्रवीभूत हुआ था, उसी समय प्रभु ने मुझे बताना चाहा कि तुम इन पंक्तियों के रचयिता के देश में जाकर उसी कवि के शब्दों में तुलसी-प्रेमी जनता के सामने भगवत भक्ति का संदेश दोहराते रहोगे।

वास्तव में मैं तीस से अधिक वर्षों से तुलसी जयन्ती के अवसर पर यही करता रहा। जो भी हो, सन् 1938 ई. में मेरे हृदय में तुलसी के प्रति जो श्रद्धा उत्पन्न हुई, वह निरंतर बढ़ती रही। तुलसी के प्रति मेरी यह श्रद्धा मेरे शोध-कार्य की ओर द्वितीय सोपान है।

जब मेरा जेसुइट धर्मसंघ में प्रशिक्षण समाप्त हुआ, तो संघ के अधिकारी की ओर से मुझे हिन्दी में एम.ए. करने की अनुमति मिली। इसके लिए मैं इलाहाबाद गया। उस समय डॉ. धीरेन्द्र वर्मा वहाँ हिन्दी विभागाध्यक्ष थे। एम.ए. के द्वितीय वर्ष में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने मुझसे पूछा कि 'आप हिन्दी में शोध-कार्य करना चाहेंगे?' बड़े अचम्भे में पड़कर मैंने उत्तर दिया 'मैं हिन्दी में शोध-कार्य करूँ?' डॉ. धीरेन्द्र ने शान्त, बल्कि दृढ़ भाव से आश्वासन दिया कि आप अवश्य ही हिन्दी में शोध-कार्य कर सकते हैं। इसके बाद मुझे राँची के संघ-अधिकारी की ओर से शोध के लिए दो वर्ष मिले। एम.ए. के बाद जब शोध का विषय निर्धारित करने का समय आया, तो डॉ. धीरेन्द्र ने मेरे सामने ब्रज तथा गुजराती सूर-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रस्ताव रखा। मैं बड़े संकोच में पड़कर मौन रहा। तब उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, 'सूर की अपेक्षा तुलसी आपको कहीं अधिक प्रिय हैं। ठीक है, आप डॉ. माताप्रसाद गुप्त के निर्देशन में अपने तुलसी पर काम कीजिए।' डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की यह उदारता मेरे शोध-कार्य की ओर तीसरा और अंतिम सोपान है।

मैंने डॉ. माताप्रसाद की सहायता से अपने शोध-कार्य की रूपरेखा तैयार की और मेरा विषय स्वीकृत हो गया। विषय का शीर्षक था 'तुलसी की रामभक्ति'। शोध-प्रबंध की भूमिका का नाम था 'रामकथा का विकास'। रामकथा पर वर्ष भर अनवरत शोध-कार्य करने पर भूमिका आधी भी नहीं लिखी जा सकी, क्योंकि वाल्मीकि के पश्चात् समस्त भारतीय साहित्य राममय बन गया है और दक्षिण-पूर्व एशिया के साहित्य में रामकथा विषयक प्रचुर सामग्री विद्यमान है। इसलिए मैंने डॉ. माताप्रसाद के परामर्श से अपना विषय बदलवाया और "रामकथा : उत्पत्ति और विकास" नामक शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया।

यही संक्षेप में मेरे शोध-कार्य के विषय के निर्धारण की कहानी है। रामकथा पर शोध-कार्य प्रारंभ करने की प्रेरणा मुझे इन तीन तत्त्वों से मिली - हिन्दी-प्रेम, तुलसी के प्रति श्रद्धा तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की उदारता। अब प्रश्न यह उठता है कि मैं क्यों उपाधि प्राप्त करने के बाद भी इस विषय पर इतने वर्षों से कार्य करता आ रहा हूँ और सम्भवत और बहुत समय तक करता रहूँगा।

मानव हृदय को द्रवित करने की जो शक्ति वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत रामायण में विद्यमान है वह अन्यत्र दुर्लभ है। फलस्वरूप यह कथा अमर हो गयी और भारत के प्राय: सभी परवर्ती कवियों ने इस कथा को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। तुलसीदास के शब्दों में - 'रामकथा के मिति जग नाहीं', अत विषय विस्तार की दृष्टि से रामकथा पर बहुत समय तक शोध-कार्य करना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। फिर भी रामकथा मुझे अन्य कारणों से इतने वर्षों तक आकर्षित करती रही।

मेरी दृष्टि में वाल्मीकि के रामायण में कला का वास्तविक उद्देश्य चरितार्थ हुआ है। कला के उद्देश्य के विषय में बहुत लिखा गया है। कला मानव जाति की उच्चतम आकांक्षा की अभिव्यक्ति का साधन है, अत: कला का उद्देश्य मनोरंजन मात्र नहीं हो सकता, उसका उद्देश्य मानव जीवन के उद्देश्य से अलग नहीं किया जा सकता है। आस्तिक होने के नाते मेरी दृढ़ धारणा है कि मनुष्य अनन्त सौंदर्य के स्रोत से निकला है और उसी अनन्त सौंदर्य तक पहुँचना मानव जीवन का वास्तविक उद्देश्य है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को इस लोक में अपना परलोक सँवारना है। कलाकार को चाहिए कि वह सीमित सौंदर्य की सृष्टि द्वारा मनुष्यों में अनन्त सौंदर्य की पिपासा बनाए रखे, उनका मन बहलाकर अनन्त सौंदर्य की ओर नये उत्साह से आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करे। यह तभी संभव है जब कलाकार नैतिकता का पूरा-पूरा ध्यान रखता है। आदि कवि ने यही किया। लोकसंग्रह का भाव एक प्रकार से वाल्मीकि रामायण तथा समस्त परवर्त्ती रामसाहित्य का सर्वस्व है। रामायण में कला तथा आदर्श का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से संसार भर के प्राचीन महाकाव्यों में वाल्मीकि रामायण का स्थान निस्सन्देह अग्रगण्य है। वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत मानव धर्म में कहीं भी साम्प्रदायिकता का स्पर्श मात्र ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा। उनके द्वारा अंकित नैतिक आदर्श विश्वजनीन है। यह परवर्त्ती रामकथा के विषय में भी सच है। वास्तव में रामकथा आदर्श जीवन का वह दर्पण है, जिसे भारतीय प्रतिभा शताब्दियों तक परिष्कृत करती रही। इस प्रकार रामकथा भारतीय आदर्शवाद का उज्ज्वलतम प्रतीक बन गयी है। वाल्मीकि के परवर्त्ती रामकाव्य के कवियों में तुलसी का स्थान अद्वितीय है। उन्होंने वाल्मीकि के लोकसंग्रह का पूरा-पूरा निर्वाह किया है और उस रामकथा के सोने में भगवद्भक्ति की सुगंध जगा दी है।

तुलसीदास ने भगवदभक्ति के विषय में जो संदेश दिया है, वह वाल्मीकि के नैतिक आदर्श की भाँति विश्वजनीन है। इष्टदेव के प्रति अनन्य आत्मसमर्पण के साथ-साथ अपने दैन्य की तीव्र अनुभूति तुलसी की भगवद्भक्ति की प्रमुख विशेषता है। उन्होंने कहीं भी कर्मकाण्ड पर बल नहीं दिया, कहीं भी मन्दिर में होने वाली पूजा के लिए अनुरोध नहीं किया। भक्तिमार्ग की नींव नैतिकता है और अपनी उपर्युक्त प्रमुख विशेषता के कारण वह सब सम्प्रदायों के ऊपर उठकर मानव मात्र के लिए उपयुक्त है।

मैं जानता हूँ कि कुछ आलोचक तुलसी द्वारा प्रतिपादित दैन्य की निन्दा करते हुए कहते हैं कि दैन्य के कारण मनुष्य ऊँचा नहीं उठ पाता है। मैं तो कहूँगा कि मनुष्य तभी ऊँचा उठता है, जब वह अपनी स्थिति की वास्तविकता पहचान कर भगवान् के सामने नतमस्तक होकर अपनी दीनता स्वीकार करता है। तुलसीदास के व्यक्तित्व की विशेषताओं में से उनका दैन्य मुझे सबसे अधिक प्रभावित करता है -

'हौं कहावत सब कहत सहत राम उपहास।'
साहब सीतानाथ सों सेवक तुलसीदास।'

अत रामकथा का लोकसंग्रह और तुलसी द्वारा प्रतिपादित भक्तिमार्ग की विश्वजनीनता, दोनों मुझे रामकथा पर शोधकार्य करते रहने के लिए विवश करते हैं।

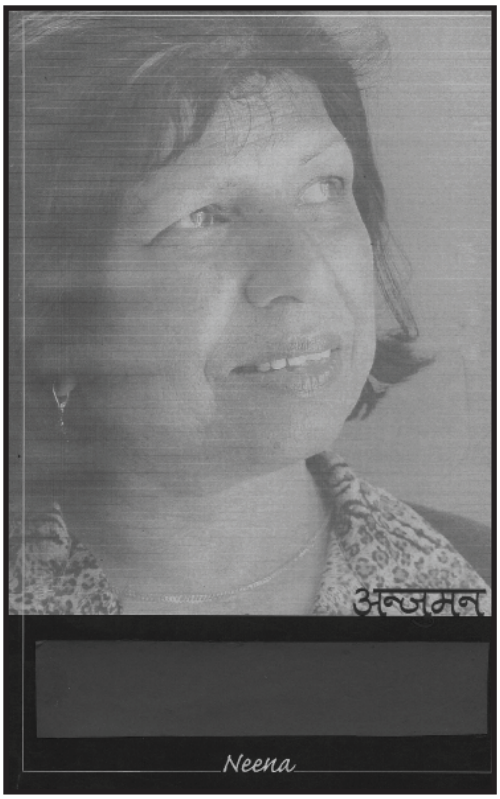

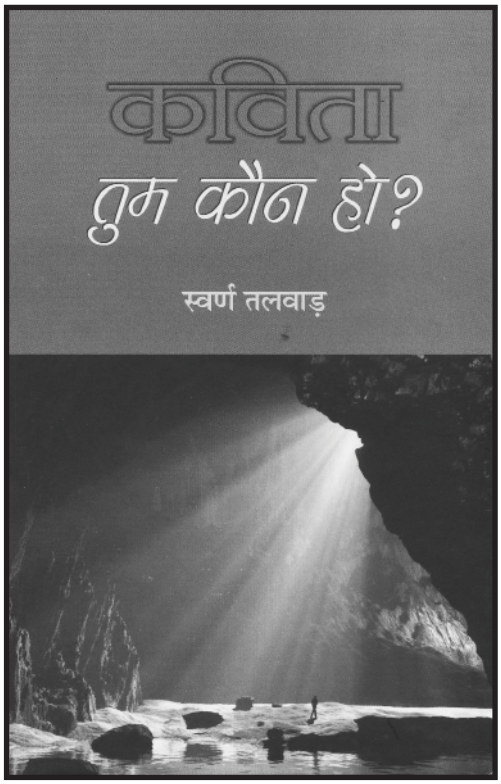

एक ईसाई की आस्था, हिन्दी-प्रेम और तुलसी-भक्ति

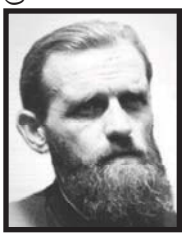

डॉ. कामिल बुल्के

अव्याहतानुयोगी मुनिजनः अर्थात् साधु से कोई भी प्रश्न पूछा जा सकता है। संस्कृत की इस उक्ति के अनुसार लोग मुझ से ये नितान्त व्यक्तिगत प्रश्न पूछने में संकोच नहीं करते। "विद्वान् होते हुए भी आपका ईसा में इतना दृढ़ विश्वास कैसे? विदेशी होते हुए भी हिन्दी तथा भारतीय संस्कृति से इतना प्रेम कैसे? ईसाई होते हुए भी तुलसी पर इतनी श्रद्धा कैसे?" इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए, जब मैं अपने जीवन पर विचार करता हूँ, तो मुझे लगता है कि ईसा, हिन्दी और तुलसीदास - ये वास्तव में मेरी साधना के तीन प्रमुख घटक हैं और कि मेरे लिए इन तीन तत्त्वों में कोई विरोध नही, बल्कि गहरा संबंध है।

जहाँ तक विद्या तथा आस्था के पारस्परिक सम्बन्ध का प्रश्न है, मैं उन दोनों में कोई विरोध नहीं पाता। मैं तो समझता हूँ कि भौतिकवाद मानवजीवन की समस्या हल करने में असमर्थ है। मैं यह भी मानता हूँ कि धार्मिक विश्वास तर्क-वितर्क का विषय नहीं है। इतना ही निवेदन है कि मुझे ईसा की शिक्षा से प्रेरणा तथा सुख-शांति मिलती है।

मेरा बचपन एक ईसा-भक्त माता की छत्र-छाया में बीता। उस समय मेरे हृदय में जो भक्ति का बीज बोया गया, वह उग कर इतना पनपता रहा कि मैंने इक्कीस साल की उमर में संन्यास लेने का संकल्प किया। मैंने सर्वप्रथम माता-पिता को इसके विषय में सब बता दिया और दोनों ने मुझे इसके लिए अनुमति दी। मैंने सन् 1935 ई. के बाद अपनी माता को नहीं देखा, किन्तु जब मैं रामचरितमानस में लक्ष्मण के प्रति सुमित्रा का यह उत्तर पढ़ता हूँ -

पुत्रवती युवती जग सोई
रघुपति भगतु जासु सुत होई

तो मुझे अनायास ही अपनी माता याद आती है, क्योंकि अपने पहले बेटे का सन्यास लेने का संकल्प सुनकर उन्होंने उसे गौरव की बात समझा और मुझे सुमित्रा के शब्दों से मिलता-जुलता उत्तर दिया।

परमात्मा के विषय में ईसा की शिक्षा सान्त्वना का स्त्रोत है। ईसा के अनुसार ईश्वर मनुष्यों का दयालु पिता है, जो हमारी प्रार्थनाएं सुनता और पश्चाताप करने पर हमें क्षमा प्रदान करता है -

"यदि तुम्हारा पुत्र तुम से रोटी माँगे, तो तुममें ऐसा कौन है, जो उसे पत्थर देगा अथवा मछली माँगे, तो उसे साँप देगा? बुरे होने पर भी यदि तुम लोग अपने बच्चों को सहज ही अच्छी चीजें देते हो, तो तुम्हारा स्वर्गिक पिता माँगने वालों को अच्छी चीजें क्यों नहीं देगा?"

"यदि किसी के एक सौ भेड़ें हों और उनमें से एक भी भटक जाये, तो क्या वह निन्यानवे भेड़ों को पहाड़ पर छोड़ कर उस भटकी हुई भेड़ को खोजने नहीं जायेगा? और यदि वह उसे पाये, तो विश्वास करो कि उसे उन निन्यानवे की अपेक्षा, जो भटकी नहीं थीं, उस भेड़ के कारण अधिक आनन्द होगा। उसी तरह मेरा स्वर्गिक पिता नहीं चाहता कि उन नन्हों में से एक भी खो जाये।"

पापियों के प्रति अनुकम्पा : एक प्रसंग

दयासागर ईश्वर के अवतार ईसा में भी दीन-दुखियों, पद-दलितों तथा पापियों के प्रति अनुकम्पा तथा सहानुभूति थी। यहाँ पर इस संबंध में इंजील का केवल एक उदाहरण दिया जा सकता है :

"ईसा बड़े सबेरे फिर मन्दिर आये। सारी जनता उनके पास इकट्ठी हो गयी थी और वह बैठ कर लोगों को शिक्षा दे रहे थे। उस समय शास्त्री व्यभिचार में पकड़ी गयी एक लड़की को ले आये और उसे बीच में खड़ा कर उन्होंने ईसा से कहा, "गुरुवर ! यह लड़की व्यभिचार करते हुए पकड़ी गयी है। संहिता में मूसा ने हमें ऐसी लड़कियों को पत्थरों से मार डालने का आदेश दिया है। आप इसके विषय में क्या कहते हैं?" ईसा झुक कर उंगली से भूमि पर लिखते रहे। जब वे उनसे उत्तर देने के लिए आग्रह करते रहे, तो ईसा ने सिर उठाकर उससे से कहा, 'तुम में से जो निष्पाप हो, वही सबसे पहले इसे पत्थर मारे,' और वह फिर झुक कर भूमि पर लिखने लगे। यह सुनकर बड़ों से ले कर छोटों तक, सब के सब, एक-एक कर के खिसक गये। ईसा अकेले रह गये और वह लड़की बीच में खड़ी रही। तब ईसा ने सिर उठा कर उनसे कहा, "मैं भी तुम्हें दण्ड नहीं दूँगा। चली जाओ और अब से फिर पाप नहीं करना।"

जो कोई ऐसे परम दयालु ईश्वर में दृढ़ विश्वास करता है, वह आशावादी है और मुस्कराते हुए जीवन के पथ पर आगे बढ़ता जाता है।

मनुष्य के विषय में ईसा की शिक्षा आश्चर्यजनक है। ईसा के अनुसार मनुष्य ईश्वर का प्रतिरूप है और हम ईश्वर को प्यार नहीं करते। प्रेम ही धर्म का सार है और उस प्रेम के दो रूप हैं अर्थात् ईश्वर का प्रेम और भ्रातृप्रेम। जब एक शास्त्री ने ईसा से पूछा कि धर्मसंहिता की सबसे बड़ी आज्ञा कौन-सी है, तो ईसा ने यह उत्तर दिया -

"अपने प्रभु ईश्वर को अपने सारे हृदय, अपनी सारी आस्था और अपनी सारी बुद्धि से प्यार करो। यह सब से बड़ी और पहली आज्ञा है। दूसरी आज्ञा इसी के सदृश - अपने पड़ोसी को अपने समान प्यार करो। इन्हीं दो आज्ञाओं पर समस्त संहिता और नबियों की शिक्षा अवलंबित है।"

"जब तुम वेदी पर अपनी भेंट चढ़ा रहे हो और तुम्हें याद आये कि मेरे भाई को मुझसे कोई शिकायत है, तो अपनी भेंट वहीं वेदी के सामने छोड़कर पहले अपने भाई से मेल करने जाओ और तब आ कर अपनी भेंट चढ़ाओ।"यदि तुम दूसरों के अपराध क्षमा करोगे, तो तुम्हारा स्वर्गिक पिता भी तुम्हें क्षमा करेगा। परंतु यदि तुम दूसरों को नहीं क्षमा करोगे, तो तुम्हारा पिता भी तुम्हारे अपराध क्षमा नहीं करेगा।"

ईसा के अनुसार मनुष्य न केवल ईश्वर का प्रतिरूप है, बल्कि वह दूसरे मनुष्यों के लिए ईश्वर का प्रतिनिधि भी है। जो मनुष्य अपने जीवन के अंत में भ्रातृप्रेम की परीक्षा में उत्तीर्ण हो

जाते हैं, वे ही स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर पायेंगे। दूसरों से ईसा यह कहेंगे "मैं भूखा था और तुम लोगों ने मुझे नहीं खिलाया, मैं प्यासा था और तुमने मुझे नहीं पिलाया, मैं परदेसी था और तुमने मुझे अपने यहाँ नहीं ठहराया, मैं नंगा था और तुमने मुझे नहीं पहनाया, मैं बीमार और बंदी था और तुम मुझसे नहीं मिलने आये।" इस पर वे पूछेंगे, "प्रभु ! हमने आपको कब प्यासा, परदेसी, नंगा, बीमार या बंदी देखा और आपकी सेवा नहीं की?" और उन्हें यह उत्तर मिलेगा, "मैं तुम लोगों से कहता हूँ- जो कुछ तुमने मेरे छोटे-से-छोटे भाइयों में से किसी एक के लिए नहीं किया, वह तुमने मेरे लिए भी नहीं किया।"

जो ईसा की इस शिक्षा पर विश्वास करता है, वह हर एक मनुष्य के प्रति श्रद्धा रखता है और दूसरों की सेवा करते हुए परम दयालु के प्रति अपने प्रेम का प्रमाण देना चाहता है। इस शिक्षा पर चलते-चलते उसके हृदय में एक अनिर्वचनीय आनंद का संचार हो जाता है और वह ईसा के इस कथन की सच्चाई का अनुमान करता है "संसार की जीवन ज्योति मैं हूँ। जो मेरा अनुसरण करता है, उसे जीवन की ज्योति प्राप्त होगी।"

"कबहुँक हौं यहि रहनि रहोगो"

मैं हिन्दी तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अपने आकर्षण का मूल स्त्रोत अपने विद्यार्थी जीवन का संस्कार मानता हूँ। मेरी जन्मभूमि बेलजियम में दो भाषाएँ बोली जाती हैं - उत्तर में फ्लेमिश और दक्षिण में फ्रेंच। एक लम्बे अरसे से समस्त देश में - प्रशासन सेना, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में - फ्रेंच भाषा का बोलबाला था और उत्तर बेलजियम का शिक्षित वर्ग आपस में फ्रेंच बोलना और फ्रेंच सभ्यता में जीना गौरव की बात मानता था। फ्लेमिश भाषा के समर्थकों का आन्दोलन प्रथम महायुद्ध के बाद जोर पकड़ने लगा और मैंने विद्यार्थी जीवन में अपनी मातृभाषा तथा फ्लेमिश संस्कृति की मर्यादा के लिए उत्तर बेलजियम के सार्वजनिक तथा सामाजिक जीवन से फ्रेंच भाषा के बहिष्कार के अभियान में वर्षों तक सक्रिय भाग लिया। मैं सन् 1935 ई. में भारत पहुँचा और मुझे यह देखकर आश्चर्य भी हुआ और दु:ख भी कि बहुत से शिक्षित लोग अपनी सांस्कृतिक परंपरा से अनभिज्ञ हैं, अँग्रेज़ी बोलना और विदेशी सभ्यता में रंग जाना गौरव की बात मानते हैं। मैंने दृढ़ संकल्प किया कि जब उत्तर भारत में जीवन बिताना है, तो उत्तर भारत की जनता की भाषा पर अधिकार प्राप्त करना मेरा कर्त्तव्य है। हिन्दी का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए मुझे शीघ्र ही संस्कृत का भी ज्ञान आवश्यक जान पड़ा और संस्कृत सीखने के बाद मैं जान गया कि संस्कृत ही समस्त भारतीय संस्कृति की कुंजी है। वर्षों तक हिन्दी तथा संस्कृत साहित्य पढ़ते रहने से मेरा मानस अब भारतीय हो गया है। हाल में मुझे इसका स्पष्ट प्रमाण मिला। मेरे वयोवृद्ध पिता जी मुझे फिर एक बार देखना चाहते थे।

इसलिए मैं चौदह साल के बाद अपनी जन्मभूमि वापस गया। सन् 1956ई. में मैं प्रथम बार कान का इलाज कराने वापस गया था। पिताजी, भाई-बहन, आदि रिश्तेदारों से मिल कर मुझे बड़ी खुशी हुई, किन्तु वहाँ के भौतिक उन्नति के वातावरण में मेरा मन नहीं रम सका। मैंने इस बात का स्पष्ट अनुभव किया कि अब मैं भारत का हूँ और भारत की सेवा में ही मेरे जीवन तथा मेरी साधना की सार्थकता है।

हिन्दी सीखने का जो संकल्प मैंने सन् 1935ई. में किया था, वह मुझे कहाँ तक ले जायेगा, यह तो मैं उस समय नहीं जान सका, किन्तु अब सोचता हूँ कि जो हुआ, अच्छा ही हुआ। मुझे इस बात पर गौरव है कि "अँग्रेजी-हिन्दी-कोश" लिखकर मैं भारत की सेवा करने में समर्थ हो सका, क्योंकि मैं अपनी साहित्यिक साधना को अपनी आध्यात्मिक साधना का अंग मानता हूँ। मैं ईसा की भक्ति से प्रेरित हो कर भारत तथा भारतीयों की यथाशक्ति सेवा करता हूँ। सन्यास लेने के बाद मैं अपनी साधना के प्रारंभिक वर्षों में इस बात का सबसे अधिक ध्यान रखा करता था कि मेरे हृदय में भगवदभक्ति सर्वोपरि हो। अब तक भगवान् के प्रति आस्था तथा भक्ति कम नहीं है, ऐसा विश्वास है, किन्तु मैं इस बात का सबसे अधिक ध्यान रखता हूँ कि मेरे हृदय में प्रत्येक मनुष्य के प्रति प्रेम और सहानुभूति हो। मेरे लिए सबसे मधुर अनुभव तब होता है, जब मैं किसी का भार हल्का कर सका और इस संसार में मेरी यही अभिलाषा रह गयी है कि मैं अधिक से अधिक लोगों की सेवा कर सकूँ। तुलसीदास का भी यही मनोभाव था। उन्होंने निरंतर दूसरों की सेवा में लगा रहने का वरदान माँगा था -

कबहुँक हौं यहि रहनि रहोंगो,
श्रीरघुनाथ कृपाल, कृपा तें सन्त स्वभाव गहोंगो।
जथा लाभ सन्तोष सदा काहू सों कछु न चहोंगो,
परहित निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहोंगो।

मेरी तुलसी-भक्ति की रामकहानी

सन् 1938ई. में मैंने रामचरितमानस तथा विनयपत्रिका को प्रथम बार आद्योपान्त पढ़ा। उस समय तुलसीदास के प्रति मेरे हृदय में जो श्रद्धा उत्पन्न हुई और बाद में बराबर बढ़ती गयी, वह भावुकता मात्र नहीं है। साहित्य तथा धार्मिकता के विषय में मेरी धारणाओं से उस श्रद्धा का गहरा सम्बन्ध है।

कला और साहित्य मानव जाति की महती उपलब्धियाँ हैं, मनुष्य की उच्च कल्पनाएँ तथा गहरी अनुभूतियाँ उनमें अभिव्यक्ति हो जाती हैं - इसलिए आस्तिक उन्हें मानव जीवन के उद्देश्य से अलग नहीं कर सकता। वह मानता है कि सौंदर्य की सृष्टि कला तथा साहित्य का लक्ष्य है, किन्तु उसके लिए यहाँ का सीमित सौंदर्य अनन्त सौंदर्य का प्रतिबिम्ब है, जैसा कि उपनिषद में लिखा है -

तमेव भान्तमनभाति सर्वम्,
तस्य भासा सर्वमिदं विभातिं

मनुष्य के हृदय में उस अनन्त सौंदर्य की अभिलाषा बनी रहती है और इस कारण वह उसके प्रतिबिम्ब के प्रति, सीमित अनिवार्य रूप से आकर्षित हो जाता है। कलाकार तथा साहित्यकार को मनुष्य की इस स्वाभाविक सौंदर्य-पिपासा को बनाये रखना तथा इसका उदात्तीकरण करना चाहिए - उसी में उसकी कला की सार्थकता है। इस कसौटी पर तुलसीदास का साहित्य खरा उतरता है। उन्होंने अवश्य लिखा है कि मैं "स्वान्तसुखाय" रघुनाथ गाथा की रचना करता हूँ, किन्तु "कला कला के लिए" आदि कला की उद्देश्यहीनता विषयक सिद्धांत उनके मानस से

कोसों दूर हैं। उनकी धारणा है कि -
कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई।।

तुलसीदास के कारण मैंने वर्षों तक रामकथा साहित्य का अध्ययन किया है। लोकसंग्रह उस महान् साहित्यिक परंपरा की एक प्रमुख विशेषता है और इस दृष्टि से तुलसीदास रामकथा-परंपरा के सर्वोत्तम प्रतिनिधि हैं। उन्होंने रामचरित के माध्यम से जो भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया है, उसमें नैतिकता तथा भक्ति के अनिवार्य सम्बन्ध पर बहुत बल दिया गया है। तुलसी के अनुसार एक ओर नैतिकता के अभाव में भगवद्गीता नितान्त व्यर्थ है और दूसरी ओर भगवद्भक्ति के सहारे ही मनुष्य नैतिकता के मार्ग पर दृढ़ कदमों से आगे बढ़ सकता है।

इष्ट अलग हैं - भाव एक है

कुछ अन्य विशेषताओं के कारण भी मैं तुलसी के भक्ति-मार्ग की ओर आकर्षित हो गया और उनका साहित्य पढ़ते-पढ़ते मेरे जीवन पर तुलसी की अमिट छाप पड़ गयी है। तुलसी ने धर्म के क्षेत्र में तर्क की सीमाओं का सुस्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है - (वाक्य ज्ञान अत्यंत निपुन भव पार न पावै कोई। निसि गृह मध्य दीप बातन्ह तम निवृत न हि होई) , निरे कर्मकाण्डी व्यर्थता (जोग जाग जप विराग तप सुतीर्थ अटत। बांधिवे को भव गयंद रेनु की रज बटत) तथा भक्तिमार्ग की आडम्बरहीनता पर बल दिया है। (सूधे मन सूधे वचन सूधे सकल करतूति। तुलसी सुधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति। उन्होंने यह भी माना है कि भक्त में चातक की एकनिष्ठता के साथ-साथ हंस का विवेक भी होना चाहिए - (राम प्रेम भाजन भरत बड़ेहि न एहि करतूति। चातक हंस सरायित टेक विवेक विभूति)।।

तुलसी के इस प्रकार के भक्तिपूर्ण उदगार पढ़कर मैं भाव-विह्वल हो जाता हूँ -
एक भरोसो, एक बल, एक आस बिस्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथवर चातक तुलसीदास।

और मुझे लगता है कि मैं तुलसी का हाथ पकड़ कर साधना के पथ पर आगे बढ़ता हूँ।

तुलसी के इष्टदेव राम हैं और मैं ईसा को अपना इष्टदेव मानता हूँ, फिर भी मैं हम दोनों के भक्ति-भाव में बहुत कुछ समानता पाता हूँ। अन्तर अवश्य है - इसका एक कारण यह भी है कि मुझमें तुलसी की चातक-टेक का अभाव है।

विलोम चित्रकाव्य माला

क्रमांक ३

- चित्रकार: अरविन्द नारले
- कवि: सुरेन्द्र पाठक

घुटने घुटने पानी भीतर, खडी हुई है इक धोबन
कपडे धो धो उमर गुजारी, बीत गया इसका यौवन
इसी काम में बचपन बीता, हुई जवां, आयी ससुराल
बाप धोबी, ससूर भी धोबी, घर बदला ना बदला हाल

धो धो कर औरों के कपडे, चलती इसकी रोटी-दाल
बारीश भी हो और धूप भी, हर धोबी का यही सवाल
कपडे धोते धोते सोंचे, कितना मुश्किल मेरा काम
धूप पानी की इच्छा करते, मेरी हो गयी उमर तमाम

एक पाठक की पाती

धर्मपाल महेन्द्र जैन (टोरंटो)

मेघनगर (म.प्र.) में रहते हुए बचपन में मैंने कई पादरी देखे। उन दिनों गोरे पादरी भी वहाँ आते थे। लम्बी सफेद दाढ़ी, मुस्कुराती चमकीली आँखें और तेजस्वी आमंत्रित आकर्षित करता चेहरा। जब पहली बार मैंने अंग्रेजी हिन्दी कोश पर फादर कामिल बुल्के नाम पढ़ा तो य-कायक उनकी ऐसी ही छबि मेरे मन में उभर आई।

उन दिनों मैं दैनिक स्वदेश, इन्दौर के संपादकीय विभाग में था और वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लिखना मेरे काम का एक हिस्सा था। तकनीकी हिन्दी शब्दों के मायाजाल से रोजमर्रा बोले जाने वाले तकनीकी शब्द चुनना और उनको लिखना मेरा शौक था। यही मेरे लेखन का उद्देश्य भी था। कामिल बुल्के के काम से इस तरह मेरा हर दिन ही साक्षात्कार होता था। मैं उनकी पकड़ और चयन की दाद देता था। आज भी जब किसी भाव के लिए सार्थक शब्द चाहिए तो कामिल बुल्के मेरी पहली पसंद है।

कामिल बुल्के के बारे में ज्यादा जानने की इच्छा खुद-ब-खुद होती गई। इंजीनियरिंग पढ़े कामिल मिशनरी कार्यों का सेवा भाव लिए बेल्जियम से भारत आए एवं एक छोटे से गाँव गुमला में गणित पढ़ाने लगे। तब चर्च अधिकारियों ने सोचा भी नहीं होगा कि वे आधुनिक हिन्दी को एक मसीहा देने जा रहे हैं। बच्चों को पढ़ाते हुए कामिल बुल्के ने बच्चों को मातृभाषा में शिक्षा देने के मूल सिद्धांत की वकालत की तथा अंग्रेजी में बोलने वाले उन भारतीयों की सोच को करारा झटका दिया जो हिन्दी को उपेक्षा भाव से देखते थे। बेल्जियम में पले-बढ़े अंग्रेज कामिल कितनी हिन्दी सीख पाएंगे, या क्या खाक हिन्दी सीख पाएंगे, यह भाव था हिन्दी अंग्रेजी प्रिय विद्वानों में।

"राम कथा, उत्पत्ति और विकास" कामिल बुल्के का पहला प्रभावी काम था जो उन्होंने अपनी पीएच.डी. उपाधि के लिए शोध प्रबंध के रूप में प्रस्तुत किया। यह अद्भुत कार्य है जो भारतीय संस्कृति को सोचने समझने का व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। अनगिनत हिन्दी विद्वानों के बीच एक अहिन्दी भाषी, सिविल इंजीनियरिंग स्नातक का हिन्दी में लिखा इतना महत्त्वपूर्ण काम! साहित्य अकादमी के तत्कालीन अध्यक्ष सुनीति कुमार चटर्जी गदगद् हो गए और कामिल बुल्के के लिए नयी चुनौतियों का सिलसिला फिर शुरू हो गया।

शब्दकोश बनाना और कामिल बुल्के की तरह लिखना बहुत कठिन है। मेरे जैसे लेखकों के लिए यह जानलेवा काम है। बिना कम्प्यूटर और 'एक्सेल' फाइल के चार-छः पेज की ग्लोसरी बनाने में नानी-दादी याद आ जाती है। ऐसे में अंग्रेजी हिन्दी का मानक शब्दकोश बनाना कामिल बुल्के जैसे जीवट और मिशनरी कार्यों के लिए जीवन देने वाले विरले लोग ही कर सकते हैं। संस्कृत कवि आचार्य मानतुंग की एक पंक्ति है - "भाषा स्वभाव परिणाम गुणै प्रयोज्यः।"

एक शब्द के अर्थ भाव और प्रयोग को लेकर आचार्य मानतुंग की ये शर्तें किसी लेखन को ग्राह्य बनाने के लिए आवश्यक हैं। कामिल बुल्के ने इस अनुशासन को अपने कोश की रचना में बखूबी निभाया। मुझे लगता है कामिल बुल्के पर तुलसीदास-जी का रचनाकार निरन्तर हावी रहा होगा। सरलतम शब्दों में कठिनतम मंतव्यों को बता जाने का कमाल ऐसी ही साधना से हो पाता है।

फादर कामिल बुल्के ने हिन्दी को जो असाधारण शब्दकोश दिया उसमें एक ओर फ्रेंच, जर्मन और अंग्रेजी की ध्वनियाँ हैं तो दूसरी ओर इलाहाबाद की सड़कों का अनुनाद है। अंग्रेजी की बेतरतीब स्वर ध्वनियाँ, उदाहरणतः cat में ,(a) bed में,(e) deadमें ,(ea) aid में, (i) ये सारे स्वर एक सुर ही अलापते हैं; हम जैसे हिन्दी भाषियों से क्या मालूम क्या उच्चारण पातीं यदि कामिल बुल्के ने बहुत सावधानी पूर्वक शब्दशः अपने कोश में उनका ध्वनि रेखन न किया होता।

इलाहाबाद की सड़कों की बात निकले तो बरबस निरालाजी दीखने लगते हैं। कामिल बुल्के में भी इसी तरह का फक्कड़पन था। उनकी जेबों में शब्दों की परचियाँ भरी होती थीं जिन पर इलाहाबाद की सड़कों पर विचार-विमर्श होता था।

कामिल बुल्के पर प्रमाणिक लिखने वाले उनके बहुतेरे साथी हैं। मैं तो बुल्के जी का एक पाठक और प्रशंसक भर हूँ। जब कभी मसीही साहित्य के साधारण अनुवाद पढ़ने में आते हैं तो कामिल बुल्के का "नया विधान" (न्यू टेस्टामेंट का अनुवाद) हिन्दी के गौरव को बढ़ा देता है।

हिन्दी के प्रति हिन्दी-भाषियों का कर्त्तव्य

डॉ कामिल बुल्के

माननीय उपकुलपति तथा प्रिय छात्रगण ! आजकल अनेक समस्याएँ देश की प्रगति में बाधा डालती हैं और उसकी भावात्मक एकता के लिए घातक सिद्ध हो सकती हैं। उनमें से भाषा की समस्या विशेष रूप से सभी विचारशील नागरिकों के लिए चिन्ता का विषय बन गई है। इस समस्या के अनेक पहलू हैं। मैं यहाँ पर कानून अथवा राजनीति की दृष्टि से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि कोण से इस समस्या पर विचार करना चाहता हूँ। हिन्दी के प्रति अहिन्दी प्रान्तों के रुख के विषय में मुझे यहाँ पर कुछ नहीं कहना है। हिन्दी के प्रति हिन्दी-भाषियों का कर्त्तव्य मेरा विषय होगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि हिन्दी-भाषी बुद्धिजीवी अपनी भाषा का समुचित आदर करेंगे और उसके प्रति अपना कर्त्तव्य पूर्ण रूप से निभायेंगे, तो भाषा की समस्या अपने आप हल हो जायेगी। हम हिन्दी के प्रश्न को प्रचार तथा आंदोलन का विषय बनाकर वास्तविकता का ध्यान नहीं रखते। कठोर सत्य यह है कि हिन्दी प्रान्तों में हिन्दी और उसके साहित्य का समादर नहीं किया जाता है। बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु आदि प्रान्तों के बुद्धिजीवी अपनी भाषा पर जितना गौरव करते हैं, अपने साहित्य से जितना प्रेम रखते है, उतना हम हिन्दी वाले नहीं करते।

संसार भर में शायद ही कोई देश होगा जहाँ उत्तर भारत की तरह साहित्यिक भाषा की वर्तनी में इतनी अनेकरूपता तथा अराजकता है जहाँ के बुद्धिजीवी अपनी बातचीत में विदेशी भाषा के शब्द मिलाकर इतनी खिचड़ी भाषा का प्रयोग करते हैं, जहाँ सूचना-पट्टों तथा विज्ञापनों में भाषा की इतनी दुर्गति कर दी जाती है, जहाँ विश्वविद्यालय के अधिकांश छात्र अपनी मातृ भाषा की, भद्दी भूलें किए बिना, दस पंक्तियाँ भी नहीं लिख पाते हैं। आशा थी कि हाई स्कूलों में अँगरेज़ी के स्थान पर हिन्दी को रखने से यह शिकायत बहुत हद तक दूर हो जायगी, किन्तु इस बात को हिन्दी प्रान्तों के सभी प्राध्यापक स्वीकार करते हैं कि इधर कई वर्षों से हिन्दी का स्तर बराबर गिरता जा रहा है।

मेरा नम्र निवेदन है कि भाषा समस्या के समाधान के लिए अपने ही प्रान्तों में परिनिष्ठित खड़ी बोली का अभियान प्रवर्त्तित करना हिन्दी-भाषियों का पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है। इस संदर्भ में भारतेंदु हरिश्चन्द्र का कथन आज भी महत्त्व रखता है -

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटै न हिय को शूल।।

(अ) हिन्दी-भाषी प्रान्तों में इस अभियान की एक प्रमुख बाधा है बुद्धिजीवियों की अँगरेज़ी-परस्ती। उन लोगों का अँगरेज़ी का मोह दूर करने में हम तभी सफल होंगे, जब हम अपने आन्दोलन को एक सांस्कृतिक तथा रचनात्मक रूप दे पायेंगे। यदि हमारा आन्दोलन अँगरेज़ी के विरोध तक सीमित रहेगा, तो वह उग्र रूप धारण करेगा और अँगरेज़ी-परस्तों के मानस पर उसका निश्चय ही उलटा प्रभाव पड़ेगा। हमें स्पष्ट करना चाहिए कि हम किसी भी भाषा का समादर करने के लिए तैयार हैं। संसार की प्रत्येक विकसित भाषा के निर्माण में शताब्दियाँ लग गई हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रतिभाशाली मनीषी उसे समृद्ध करते चले आ रहे हैं। उन भाषाओं की अपनी-अपनी मौलिकता है। उनमें से एक पर पूरा अधिकार प्राप्त करने से हम एक महान् आध्यात्मिक एवं एक सांस्कृतिक निधि के भागी, एक समृद्ध परिवार की बपौती के साझेदार बन जाते हैं। हमारा विरोध अँग्रेज़ी भाषा और उसके साहित्य से नहीं है। हम इस भाषा की समृद्धि और उसके साहित्य का महत्त्व समझते हैं, किन्तु हम यह भी जानते हैं कि हमारे सार्वजनिक जीवन में अँगरेज़ी को जो स्थान मिला है, वह हमारी राजनीतिक पराधीनता का अवशेष है। हमारे सामाजिक जीवन में उसे जो स्थान प्राप्त है, वह हमारी मानसिक पराधीनता का प्रतीक है, और हमारी शिक्षा-संस्थाओं में जो अँगरेज़ी माध्यम का प्रयोग चला आ रहा है, उससे हमारी प्रतिभा कुंठित हो गयी है।

शताब्दियों की परतंत्रता के बाद अब हमारा स्वाभिमान धीरे-धीरे जाग रहा है। यह संतोष की बात है कि हमारे विद्यार्थियों ने स्वाभिमान के इस अभियान का नेतृत्व ले लिया है। उनके अनुरोध से अँगरेज़ी विज्ञापन प्रायः लुप्त हो गये हैं - इस प्रकार हमारे नगरों के चेहरे पर जो दासता की कालिख लग गई थी, वह छात्रों की जागरूकता के फलस्वरूप धुल गई है। अब इस आंदोलन का दूसरा रचनात्मक चरण उतना ही महत्त्वपूर्ण है। क्या हमारा स्वाभिमान यह बरदाश्त कर सकता है कि उन विज्ञापनों तथा नाम-पट्टों के माध्यम से हम दुनिया के सामने इसका प्रमाण देते रहें कि हम अपनी ही भाषा ठीक तरह से नहीं लिख सकते हैं? अब तक मुझे एक भी शहर नहीं मिला, जहाँ दर्जनों स्थलों पर 'मिष्ठान्न भंडार' के हिज्जे में ग़लतियाँ न मिली हों।

इस संदर्भ में मेरा एक नम्र निवेदन भी है। इस आन्दोलन में उग्रता की गंध न आने पाये। जिस हथियार से महात्मा गाँधी देश में अँगरेज़ी का साम्राज्य समाप्त कर स्वराज्य करने में समर्थ हुए, उसी अहिंसात्मक सत्याग्रह का सहारा लेकर हम अँगरेज़ी का साम्राज्य समाप्त कर उत्तर भारत में हिन्दी का राज्य स्थापित कर सकते हैं। यदि हमारा आत्मविश्वास पक्का है, यदि हम दृढ़प्रतिज्ञ होकर यह आन्दोलन आगे बढ़ाते रहें, तो हमें बल प्रयोग तथा हिंसात्मक कार्रवाई की जरूरत नहीं पड़ेगी और हमें सभी बुद्धिमान नागरिकों का सहयोग प्राप्त होगा।

शिक्षा-संस्थाओं में अँगरेज़ी के स्थान की समस्या का भी ऐसा संतुलित समाधान किया जाए, जिसे सभी नागरिक सहर्ष स्वीकार कर सकें। दुनिया भर के सभी शिक्षा-शास्त्री यह बात मान लेते हैं कि मातृभाषा और प्रतिभा का एक रहस्यमय एवं अत्यंत गहरा सम्बन्ध है। मातृभाषा के माध्यम से ही प्रतिभा का स्वस्थ विकास सम्भव है। मस्तिष्क में परिपक्वता आने से पहले किसी विदेशी भाषा के माध्यम से जानकारी तो प्राप्त की जा सकती है, किन्तु मस्तिष्क का स्वाभाविक विकास असम्भव-सा है। विदेशी भाषा को समस्त शिक्षा का माध्यम बना देने से मस्तिष्क पर एक प्रकार का जकड़-जामा पहना दिया जाता है जिससे उसकी मौलिकता के स्रोत सूख जाते हैं, उसकी सर्जनात्मक शक्तियाँ दुर्बल बनती हैं और एक कृत्रिम तथा निर्जीव अनुकरणशीलता उसकी मुख्य विशेषता रह जाती है। भारत में प्रतिभा की कमी

नहीं है और बहुत-से मेधावी भारतीय साहित्यकारों ने अँगरेज़ी में लिखने का प्रयास भी किया है। क्या वे अपनी रचनाओं द्वारा अँगरेज़ी साहित्य समृद्ध करने में समर्थ हुए? कदापि नहीं। यदि असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न लेखकों की यह हालत है, तो अँगरेज़ी के माध्यम से पढ़ने वाले साधारण विद्यार्थियों की बुद्धि निश्चय ही कुंठित हो जाती है। अत: मातृभाषा को समस्त शिक्षाक्रम का माध्यम बनाने पर शिक्षा का स्तर गिरेगा - अँगरेज़ी-परस्तों की यह धारणा नितान्त अवैज्ञानिक तथा निर्मूल है। इसका अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि हमारी शिक्षा संस्थाओं से अँगरेज़ी अथवा अन्य भाषाओं का बहिष्कार करने में हमारे विद्यार्थियों का कल्याण है। अँग्रेज़ी का पूर्ण बहिष्कार चाहने वाले यह तर्क अवश्य दिया करते हैं कि फ्रांस, रूस, जर्मनी और जापान आदि में अँगरेज़ी की जरूरत नहीं मानी जाती है, क्योंकि समस्त शिक्षा का माध्यम फ्रेंच, रूसी, जर्मन तथा जापानी है। ऐसे लोगों को याद दिलाना चाहिए कि उन देशों के विद्यार्थी, विशेष रूप से विज्ञान के विद्यार्थी कम-से-कम एक विदेशी भाषा की भी जानकारी रखते हैं। आजकल उन देशों में एक भी विद्वान् ऐसा नहीं मिलेगा, जो दो-तीन विदेशी भाषाओं में अपने विषय का साहित्य न पढ़ सके। इस तरह हम देखते हैं कि जहाँ तक उत्तर भारत में अँगरेज़ी के स्थान पर प्रश्न है, उसे इस प्रकार सुलझाया जा सकता है कि हम पर एकांगीपन अथवा कट्टरपन का दोष नहीं मढ़ा जा सके। हम मेधावी विद्यार्थियों के लिए अँगरेज़ी को सहायक भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं, किन्तु साथ-साथ हमें अपने छात्रों की प्रतिभा के स्वाभाविक एवं स्वस्थ विकास की सुरक्षा के लिए इस माँग पर दृढ़ रहना चाहिए कि अंततोगत्वा शिक्षा के सभी स्तरों पर माध्यम के रूप में मातृभाषा का ही प्रयोग किया जाए। जहाँ तक सार्वजनिक जीवन तथा प्रशासन की भाषा का प्रश्न है, इतना ही कहना पर्याप्त है कि दुनिया भर में कहीं भी ऐसा कोई विकसित स्वतंत्र देश ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा, जहाँ के नागरिक सार्वजनिक सभाओं में तथा प्रशासन के लिए एक विदेशी भाषा की शरण लेते हैं। क्या भारत हमेशा के लिए इसका अपवाद बना रहना स्वीकार कर सकता है?

(आ) आज हिन्दी की बोलियों के सम्बन्ध में एक भ्रान्त धारणा परिनिष्ठित खड़ी बोली की प्रगति के मार्ग में बाधा उपस्थित कर सकती है। कुछ लोगों का कहना है कि ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि उत्तर भारत की स्वतन्त्र और स्वाभाविक भाषाएँ हैं, किन्तु साहित्यिक खड़ी बोली, एक कृत्रिम भाषा है, जो किसी की मातृ भाषा न होकर ज़बरदस्ती उत्तर भारत के लोगों पर लादी जा रही है। यह धारणा भ्रामक है और हिन्दी प्रान्तों की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक एकता के लिए ही नहीं, खड़ी बोली के विकास के लिए भी घातक सिद्ध हो सकती है। हिन्दी की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर कुछ हिन्दी-विरोधी इस धारणा को बढ़ावा दे रहे हैं। वास्तव में आधुनिक हिन्दी खड़ी बोली 20 करोड़ लोगों की एक मात्र साहित्यिक भाषा है। इस विशाल जन समुदाय की शक्ति अपार है, किन्तु यदि हम सचेत न रहें, तो यह शक्ति असंगठित होकर बिखर सकती है। पिछले वर्ष भारत सरकार के 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' की ओर से भारतीय भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकों की एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। सभी उपलब्ध साधनों तथा स्रोतों से लाभ उठाकर उस प्रदर्शनी के लिए लगभग 5000 पुस्तकें मिल सकीं। उनमें से लगभग 3500 पुस्तकें हिन्दी की ही थीं और शेष डेढ़ हज़ार अन्य भारतीय भाषाओं की। मलयालम में 183 पुस्तकें थीं, तमिल में 116 गुजराती में 78 पंजाबी में 71 बँगला में 65 तथा मराठी में भी 65। इन आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी की स्थिति सब से अधिक सन्तोषजनक है। हिन्दी की यह संगठित शक्ति यदि बोलियों में बिखर जाए, तो इसका परिणाम उत्तर भारत के लिए कितना घातक होगा। वास्तव में मलयालम आदि अन्य भारतीय भाषाओं की भी बोलियाँ हैं तथा यूरोप के देशों में प्रत्येक भाषा की बहुत-सी बोलियाँ वर्तमान हैं, किन्तु वहाँ कोई भी यह कल्पना नहीं कर पाता कि एक परिष्कृत साहित्यिक भाषा का निर्माण हो जाने के बाद शिक्षा, सार्वजनिक जीवन तथा साहित्य के लिए फिर बोलियों का सहारा लेकर देश की सांस्कृतिक तथा साहित्यिक एकता को विच्छिन्न कर दिया जाए। जर्मनी में प्रत्येक प्रान्त की अपनी-अपनी बोली है, उच्च जर्मन अर्थात् राजभाषा किसी भी प्रान्त की बोली नहीं है, किन्तु प्राइमरी स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक सभी शिक्षा संस्थाओं में इसी एक राष्ट्रीय भाषा का परिनिष्ठित रूप सिखलाया जाता है और यही भाषा समस्त सांस्कृतिक, सार्वजनिक तथा साहित्यिक जीवन वहन करती है। यूरोप के देशों में प्राचीन साहित्य का अभाव नहीं है, किन्त हाई स्कूल के अंत तक विद्यार्थियों के सामने केवल परिनिष्ठित जर्मन, फ्रेंच, अँगरेज़ी आदि की रचनाएँ पढ़ाई जाती हैं। हमारे विद्यार्थी बचपन से ही अपनी हिन्दी पुस्तकों में डिंगल, मैथिली, ब्रज, अवधी आदि के उद्धरण पढ़कर एक ही शब्द के कई रूप देखते हैं जिससे उनके मन में यह विश्वास घर कर जाता है कि हिज्जे की अबाध स्वतंत्रता हिन्दी की एक बड़ी सुविधाजनक विशेषता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे भावी नागरिक शुद्ध खड़ी बोली लिख सकें, तो हमें भाषा के शिक्षण में आमूल परिवर्तन करना पड़ेगा। वर्षों से मेरा दृढ़ विश्वास रहा है कि हमें शुद्ध खड़ी बोली की रचनाओं को ही हाई स्कूल के छात्रों के सामने रखना चाहिए। उनकी पाठय-पुस्तकों में संस्कृत, पुरानी हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के महान् कवियों की रचनाओं का परिचय खड़ी बोली में दिया जा सकता है जिससे विद्यार्थी भारतीय परंपरा से अनभिज्ञ न रहें।

यूरोप की विकसित भाषाओं के कोशों में केवल शुद्ध परिनिष्ठित भाषा के शब्द मिलते हैं। किन्तु हिन्दी के कोशों में प्राय पद्य में प्रयुक्त अवधी ब्रज शब्द भी दिये जाते हैं। अब समय आ गया है कि आधुनिक हिन्दी के कोशों में केवल परिनिष्ठित खड़ी बोली के शब्द सम्मिलित किये जायें। कुछ लोगों की आशंका है कि इस प्रकार खड़ी बोली को प्रमुखता देने से बोलियों का अस्तित्व संकट में आ सकता है। यूरोप का इतिहास इसका प्रमाण है कि यह आशंका निर्मूल है। जंगल का प्राकृतिक सौंदर्य, खेतों की हरियाली, बरसाती नदियों की अठखेलियाँ - यह सब बना रहता है, किन्तु सभ्यता के विकास की माँग है कि जंगल में सड़कें बनाई जायें, उद्यानों का निर्माण हो तथा नहरों की खुदाई हो। इसी तरह बोलियों में रहते साहित्यिक भाषाओं का निर्माण संस्कृति के विकास के लिए अनिवार्य है।

(इ) हिन्दी के विकास की दिशाओं के विषय में विचार करें। खड़ी बोली एक अत्यंत सरल भाषा है। इसकी यह सरलता

इसके स्वाभाविक प्रसार का मुख्य कारण है। व्याकरण में जटिलता नहीं है। उच्चारण तथा वर्त्तनी में पूर्ण सामंजस्य है। इस भाषा का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त करना इतना आसान है कि बहुत-से लोग न केवल इसका व्यवस्थित अध्ययन अनावश्यक समझते हैं, बल्कि उसे और सरल बना देने के लिए शब्दों का लिंगभेद मिटाना, ने का प्रयोग निकालना आदि प्रस्ताव में रखने से नहीं हिचकते। ऐसे लोगों से मेरा नम्र निवेदन है कि खड़ी बोली के चार सौ साल का स्वाभाविक विकास हम किसी समिति में बैठकर प्रस्तावों के द्वारा नहीं बदल सकते हैं। जो फ्रेंच सीखते हैं, वे शब्दों का लिंगभेद मिटाने की कल्पना नहीं करते, तो खड़ी बोली सीख-ने वाले इस अपेक्षाकृत सरल भाषा में कृत्रिम परिवर्तन करने की बात क्यों सोचते हैं? दूसरी ओर, इधर कुछ हिन्दी विद्वान् तथा साहित्यकार इतनी क्लिष्ट तथा कृत्रिम हिन्दी लिखने लगे हैं कि खड़ी बोली की सबसे बड़ी विशेषता अर्थात् इसकी सुबोधगम्यता संकट में आ गयी है। हिन्दी के भावी विकास के लिए यह अत्यंत आवश्यक हो गया हे कि हम खड़ी बोली के इस नैसर्गिक गुण की रक्षा करें और उसे यथा संभव सरल ही बनाये रखें।

सामान्यतया किसी भाषा में नये शब्दों का निर्माण धीरे-धीरे उसी भाषा के प्रयोक्ताओं द्वारा होता है, किन्तु आजकल विज्ञान आदि अनेक ऐसे विषयों पर हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों की जरूरत पड़ रही है - इस असाधारण परिस्थिति का सामना करने के लिए समितियों द्वारा नये शब्दों का निर्माण अनिवार्य हो गया है। केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान शब्दावली' हिन्दी का सामर्थ्य प्रमाणित करता है। सब मिलाकर यह शब्दाव-ली बोधगम्य है। हिन्दी का हित इसमें है कि हमारे प्राध्यापक उन शब्दों का प्रयोग करें। बिहार, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की सरकारें प्रशासन की शब्दावालियाँ प्रकाशित कर चुकी हैं - उनमें एकरूपता लाना तथा उन्हें कहीं अधिक सरल बनाना अत्यन्त आवश्यक है।

खड़ी बोली की वर्त्तनी में जो अनेकरूपता है, वह खट कती अवश्य है, किन्तु हिन्दी के विरोधी उसे आवश्यकता से कहीं अधिक महत्त्व देते हैं। पंचमाक्षर और अनुस्वार का विकल्प तत्सम शब्दों में हलन्त का प्रश्न 'आए' आदि शब्दों में स्वर अथवा य का प्रयोग सर्वनाम तथा संज्ञा के साथ विभक्ति मिलाने या अलग लिखने का विकल्प - ये सब बातें गौण ही हैं और इनमें बड़ी आसानी से एकरूपता लायी जा सकती है। किन्तु इस स्थितिकरण के चलते हमें भाषा की प्रकृति के साथ अन्याय नहीं करना चाहिए। अनुस्वार तथा चन्द्रबिन्दु का प्रयोग उच्चारण पर आधारित है। दोनों को बनाये रखना चाहिए।

अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी के उपयोगी साहित्य की स्थिति अधिक संतोषजनक है। यह विश्वविद्यालय स्तर की पाठय पुस्तकों के आँकड़ों से स्पष्ट है। संस्कृत की समस्त श्रेष्ठ रचनाओं का सरल हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के मौलिक साहित्य का अनुवाद सबसे अधिक हिन्दी में प्राप्य हैं । हिन्दी प्रकाशन-संस्थाओं तथा पाठकों की संख्या देखकर हमें विश्वास है कि निकट भविष्य में हिन्दी के माध्यम से न केवल किसी भी विषय का अध्ययन संभव होगा, बल्कि समस्त भारतीय ललित साहित्य का भी परिचय प्राप्त किया जा सकेगा। अत: इसमें कोई भी संदेह नहीं रह जाता है कि उत्तर भारत में हिन्दी अँगरेज़ी का स्थान ले सकती है और हमारे विद्यार्थियों के पूर्ण मौलिक विकास का साधन बनने में समर्थ है। अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी का प्रचार हमारा उत्तरदायित्व नहीं है। हम सरल स्वाभाविक परिनिष्ठित हिन्दी की उपादेयता बढ़ाते रहें। अन्य प्रान्तों के विद्यार्थी लाभ उठाने के उद्देश्य से अपने आप हिन्दी सीखने लगेंगे और अन्ततोगत्वा हिन्दी संपर्क भाषा मात्र न रहकर समस्त भारतीय संस्कृति की कुँजी बन जायेगी।

प्रिय छात्रगण ! आप लोगों को परीक्षा में जो सफलता मिली है, उसके लिए मेरी बधाइयाँ स्वीकार करें। अध्ययन के अगले चरण की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। इस महान् देश का भविष्य आप लोगों के हाथ में हैं। आप लोग देश की सेवा करते हुए अपना जीवन सार्थक बना लें। मैं जयशंकर प्रसाद के शब्दों में आप लोगों को आशीर्वाद देता हूँ -

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पन्थ है, बढ़े चलो बढ़े चलो

(जीवाजी विश्व विद्यालय के दीक्षान्त समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में २९-२-१९६८ प्रस्तुत भाषण)

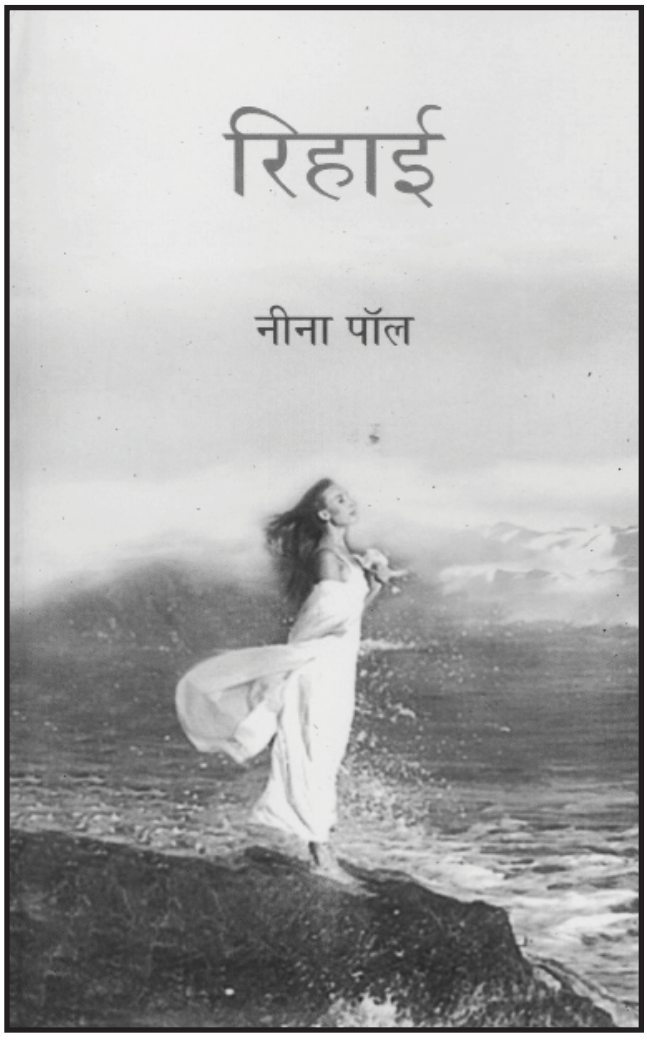

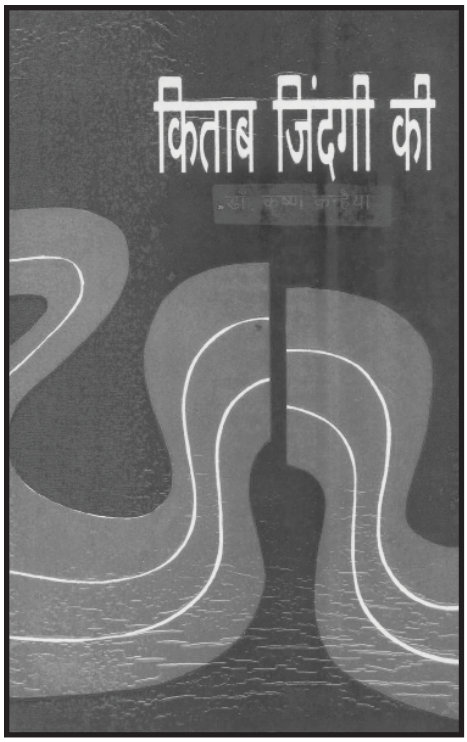

कैनेडा का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी साप्ताहिक • हर सप्ताह 30,000 पाठक

हिन्दी Abroad

www.hindiabroad.com

हिन्दी Abroad

Published by
HINDI ABROAD MEDIA INC.

Chief Editor
Ravi. R. Pandey
(Media Critic, Ex Sub Editor - Times Of India Group, New Delhi)

Editor
Jayashree

News Editor
Firoz Khan

Reporter
Rahul, Shahida

New Delhi Bureau
Rangnath Pandey
(Ex Chief Sub Editor - Navbharat Times, New Delhi)
Shiela Sharma,
Vijay Kumar

Designing
AK Innovations Inc.
416-892-1538

7071 Airport Road, Suite 204A
Mississauga, ON
Canada. L4T 4J3
Tel: 905-673-9929
Fax: 905-673-9114
E-mail: hindiabroad@gmail.com
editor@hindiabroad.com
Web: www.hindiabroad.com

Disclaimer: The opinions expressed in Hindi Abroad may not be those of the publisher. Contents of this publication are covered by copyright and offenders will be prosecuted under the law.

भारतीय साहित्य और हिन्दी

देवियो और सज्जनो !

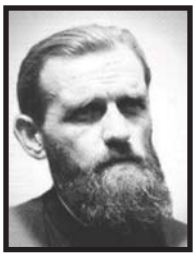

'अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन' का निमंत्रण स्वीकार करने में मुझे इसीलिए संकोच हुआ है कि मैं साहित्यकार नहीं हूँ। सम्मेलन में साहित्य के अतिरिक्त भाषा पर भी विचार-विनिमय की बात सुनकर यह संकोच कुछ अंश तक दूर हुआ, क्योंकि मैं तीस वर्ष से हिन्दी पढ़ता आ रहा हूँ और उसे अपनी ही भाषा मानने लगा हूँ। इसके अतिरिक्त मैं हिन्दी का उन्नयन देश का ही उन्नयन समझता हूँ। अपने विचार खड़ी बोली में प्रस्तुत करने से भाषा की भंगिमा और व्यंजकता बढ़ जायेगी, हिन्दी के विषय में मेरी इस धारणा ने मुझे यहाँ आने के लिए बाध्य किया है।

मैं कानपुर की 'हिन्दी प्रचारिणी समिति' का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे हिन्दी की सेवा करने का अवसर दिया है। उद्घाटन समारोह का सभापति बनाकर समिति के कर्णधारों ने मुझे जो सम्मान दिया हे, इसके लिए भी मैं उन्हें धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

सम्मेलन के तीन उद्देश्य विशेष रूप से महत्त्व रखते हैं, अर्थात् भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा, हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य के समन्वय तथा हिन्दी के उन्नयन के संबंध में कौन-सा दृष्टिकोण समस्त देश के लिए हितकर सिद्ध हो सकता है और इन उद्देश्यों के कार्यान्वयन में साहित्यकार का क्या योगदान संभव है, इसके विषय में मैं आप लोगों के सामने अपने विचार रखना चाहता हूँ।

सम्मेलन का प्रथम उद्देश्य भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा के संवर्द्धन से सम्बन्ध रखता है। सभी विचारशील भारतीय चाहते हैं कि समस्त देश में, विशेषकर साहित्यकारों में भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा का संवर्द्धन हो, किन्तु इस निष्ठा के स्वरूप के विषय में मतभेद हो सकता है। साहित्यकार उदारमन हुआ करते हैं; वे किसी भी संकीर्णता से मुँह फेर लेते हैं; वे जागरूक हैं; वे विश्वभर की गतिविधि की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं; वे उन्नतिशील हैं। अतीत की प्रशंसा के नाम पर वर्त्तमान की समस्याओं की ओर से आँख बंद कर लेना उन्हें स्वीकार नहीं है। अत हमें भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा की ऐसी उदार एवं संतुलित परिभाषा देनी चाहिए कि हमारे जागरूक उदीयमान साहित्यकार उसकी ओर आकृष्ट हो जाएँ।

हमें प्राचीन और नवीन का समन्वय करना है। आधुनिक भारत में इस समन्वय का अभाव प्रतीत होता है। परंपरागत पद्धति पर संस्कृत पढ़ने वाले हमारे प्राचीन साहित्य भंडार से प्राय: कुछ ऐसा नहीं निकाल पाते हैं, जो भारत की वर्त्तमान समस्याओं के समाधान में सहायक हो। वे प्राय: मध्यकालीन रूढ़ियों में ग्रस्त होकर देश की

प्रगति में योगदान करने में असमर्थ होते हैं। ऐसे पुराणपंथियों को प्राचीन भारतीय संस्कृति के असली प्रतिनिधि समझ कर हमारे जागरूक साहित्यकार देश के गौरवमय अतीत के प्रति उदासीन हो जाते हैं और भारत के प्राचीन ज्ञान भंडार तथा संस्कृत साहित्य के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ रह जाते हैं।

वास्तव में भारतीय संस्कृति में विचारों की उदारता, स्वतंत्रता तथा निर्भीक जिज्ञासा के विशेष लक्षण हैं। इतिहास इसका साक्षी है कि भारत में नयी धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराएँ बराबर उत्पन्न होती रहीं और नये विचारों का स्वागत होता रहा। अतीत के भंडार से किसी काल विशेष के कुछ ही सिद्धांत निकालकर उन्हें भारतीयता की एकमात्र प्रतिनिधिक उपलब्धि ठहराना, भारत की शताब्दियों तक निरंतर आगे बढ़ती हुई उदार संस्कृति के प्रति घोर अन्याय ही है। वाल्मीकि, कालिदास और रवीन्द्रनाथ के साहित्य में संकीर्ण राष्ट्रीय अथवा रूढ़िग्रस्त जड़ता ढूँढने पर भी नहीं मिलेगी।

वाल्मीकि ने जिस भारत का चित्रण किया है, वह अपने अतीत गौरव से मोहित होकर निष्क्रिय नहीं बन गया था, वरन् हृदय में जीवन के प्रति उत्साह भरकर अग्रसर होता रहा था। कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में लिखा है - "पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्। सन्त परीक्ष्य-अन्तरद्-भजंते मूढ़ परप्रत्ययनेवबुद्धः।।" पुराना हो जाने से ही न तो कोई काव्य अच्छा हो जाता है और न नया होने से ही बुरा हो जाता है। समझदार लोग दोनों को परखकर उनमें से एक को अपनाते हैं। मूर्ख ही दूसरों के कहने पर चलता है। काव्य के विषय में कालिदास की यह उक्ति संस्कृति के अन्य क्षेत्रों पर भी लागू है। संकीर्णता, एकांगिता, अपने आप में सीमाबद्धता - यह सब भारतीय संस्कृति के मनोभाव से कोसों दूर है। किसी भी ज्ञान का बहिष्कार, किसी भी भाषा की जानकारी का विरोध अभारतीय ही है।

अँग्रेज़ी भाषा नहीं जानने पर घमंड करना अवश्य ही मूर्खता है, किन्तु विदेशी भाषा में ही अपने विचार प्रकट कर सकना, अपने देश का अतीत भुलाकर, अपने यहाँ की साहित्यिक परंपरा से अनिभज्ञ रहकर, विदेशी संस्कृति-सभ्यता में रंग जाना, क्या यह गौरव की बात है? ऐसी मनोवृत्ति से भारतीय प्रतिभा की मौलिकता नष्ट होकर निर्जीव अनुकरण में पंगु हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा तथा स्वाभिमानपूर्ण आधुनिकता में कोई विरोध नहीं है। हम अपने साहित्यकारों से आशा नहीं करेंगे कि वे अतीत के गौरव-गुणगान में आज की आवश्यकताएँ भूल जाएँ। हम नहीं चाहते कि वे देश के द्वार बंद कर बाहर से कुछ नहीं ग्रहण करें, किन्तु उनसे अवश्य अनुरोध करेंगे कि वे कालिदास के परामर्श के अनुसार नवीन को परखने के बाद ही ग्रहण करें। प्रेमचन्द की कहानी कला का मूल स्त्रोत विदेशी है, किन्तु उन्होंने उसे अपनी मौलिक प्रतिभा के साँचे में ढालकर एक स्वाभाविक भारतीय रूप प्रदान किया है जो देश के मनोविज्ञान के अनुकूल है। आजकल यथार्थवाद के नाम पर बहुत से उपन्यास निकलते रहते हैं, जिनमें प्रधानतया देश की कुण्ठा तथा मनुष्य की पाशविक वृत्तियों का चित्रण रहता है। इस प्रकार का उद्देश्यहीन यथार्थवाद भारत की साहित्यिक परंपरा से मेल नहीं खाता। यथार्थ को दिशा देना, कुण्ठा के अंधकार से निकलने का मार्ग दिखाना, मनुष्य को पशुसुलभ धरातल के ऊपर उठाना, यह भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार साहित्य का उद्देश्य है।

"कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई।"

हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में समन्वय की समस्या का समाधान अपेक्षाकृत सरल है। वस्तुस्थिति यह है कि एक भारतीय भाषा के पाठक तथा साहित्यकार बहुत दूर तक अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य से अनभिज्ञ हैं। हम भले ही पाश्चात्य साहित्य की आधुनिकतम गति-विधि की जानकारी प्राप्त करने के लिए सतर्क रहें, किन्तु अपने पड़ोसी प्रान्त की साहित्यिक प्रगति के संबंध में नहीं के बराबर जानते हैं। उस अज्ञान को दूर करने के लिए हमें कोई विशेष उत्सुकता भी नहीं होती और उत्सुकता होने पर प्रायः साधन का अभाव रहता है। यह परिस्थिति देश की भावात्मक एकता में बाधक है। एक दूसरी बात भारत की भावात्मक एकता के लिए और भी घातक है। कुछ लोगों के मन में यह भय घर कर गया है कि हिन्दी अन्य भारतीय भाषाओं की बाधक बन सकती है। इस आशंका को दूर करने के लिए हमें इस बात की घोषणा करनी चाहिए कि साहित्य के क्षेत्र में सभी भारतीय भाषाओं को समान अधिकार प्राप्त है। उनमें से कोई भी भाषा किसी दूसरी भाषा की अपेक्षा अधिक भारतीय नहीं है। कोई भी आधुनिक भारतीय भाषा भारत में विशेष साहित्यिक प्रतिनिधित्व का दावा नहीं कर सकती। भारत के साहित्यकार बराबरी के स्तर पर ही एक-दूसरे से मिल सकते हैं और एक-दूसरे से प्रेरणा ले सकते हैं। शुद्ध साहित्यिक मापदंड की कसौटी पर कसने के बाद ही किसी को विशेष सम्मान मिलना चाहिए। फिर भी विभिन्न भाषाओं में समन्वय स्थापित करने में हिन्दी की विशेष उपयोगिता स्पष्ट है।

जब तक हम विभिन्न भाषाओं के साहित्य से अनभिज्ञ रहेंगे, तब तक समन्वय का प्रश्न उठ ही नहीं सकता। दूसरी ओर सभी भारतीय भाषाओं का अध्ययन असंभव है। इस परिस्थिति में अनुवाद अनिवार्य हो जाता है। सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य का अनुवाद सभी अन्य भाषाओं में कर देना बहुत समय तक असंभव रहेगा, किन्तु हिन्दी प्रकाशन संस्थाओं तथा पाठकों की संख्या को दृष्टि में रखकर देखें तो इसमें कोई भी संदेह नहीं रह जाता कि निकट भविष्य में अन्य भारतीय भाषाओं के उच्चतम साहित्य का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जा सकता है। मेरा सुझाव है कि इसके विषय में एक व्यावहारिक सुनिश्चित योजना तैयार करें। इस योजना के कार्यान्वयन के फलस्वरूप हिन्दी समस्त अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की कुंजी बन जायेगी और उससे लाभ उठाने के लोभ से अन्य भाषा-भाषी भी अपने-आप से हिन्दी सीखने के लिए उत्सुक हो जायेंगे। यह सच है कि हम दूसरों पर हिन्दी नहीं लाद सकते हैं, किन्तु हिन्दी की उपयोगिता बढ़ाकर दूसरों को लुभाना अन्याय तो नहीं कहा जा सकता है?

हिन्दी के उन्नयन का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस समस्या पर विचार करते समय हमें कठोर यथार्थ को दृष्टि में रखना चाहिए। जब तक हिन्दी प्रान्तों में हिन्दी के प्रति घोर उदासीनता बनी रहती है, तब तक हम आशा नहीं कर सकते कि

दूसरे प्रान्तों के लोग हिन्दी का सम्मान करेंगे। अत: इस बात की अत्यंत आवश्यकता है कि हम हिन्दी वाले अपने यहाँ हिन्दी को उसकी वर्त्तमान दयनीय दशा से उबार कर समुचित आदर एवं यथोचित स्थान प्रदान करें।

दुनिया भर में शायद ही कोई देश होगा जहाँ उत्तर भारत की तरह सूचनापट्टों तथा विज्ञापनों में भाषा की इतनी दुर्गति कर दी जाती है और जहाँ विश्वविद्यालय के अधिकांश छात्र हिज्जे की भद्दी भूलें किये बिना अपनी भाषा में दस पंक्तियाँ तक नहीं लिख सकते हों। हमारे विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के हिन्दी प्राध्यापकों तथा साहित्यकारों को छोड़कर हिन्दी प्रान्तों के बुद्धिजीवी एक विदेशी भाषा में सोचते हैं और काम करते जाते हैं; वे प्राय हिन्दी में अपने विचार सुव्यवस्थित रूप से व्यक्त करने में असमर्थ हैं। नकारात्मक नारों से अथवा हिन्दी नहीं जानने वालों की निन्दा करने से हिन्दी की इस अप्रतिष्ठा का निवारण नहीं हो पाएगा। हमें अपने भाईयों में स्वाभिमान का भाव संचारित करना और हिन्दी सीखनेवालों का मार्ग प्रशस्त कर देना चाहिए।

यदि हम चाहते हैं कि हिन्दी प्रान्तों के भावी नागरिक शुद्ध खड़ी बोली लिख सकें, तो हमें भाषा के शिक्षण में आमूल परिवर्तन करना चाहिए। हमारे विद्यार्थी बचपनसे ही अपनी हिन्दी पुस्तकों में डिंगल, मैथिली, अवधी, ब्रज आदि के उद्धरण पढ़कर एक ही शब्द के बहुत से रूप देखते हैं जिससे उनके मन में यह धारणा घर कर लेती है कि हिज्जे की अबाध एवं सुविधाजनक स्वतंत्रता हिन्दी की एक प्रमुख विशेषता है। बहुत वर्षों से मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमें शुद्ध खड़ी बोली की रचनाओं को हाईस्कूल विद्यार्थियों के सामने रखना चाहिए। उनकी पाठ्य पुस्तकों में संस्कृत तथा साहित्यिक हिन्दी बोलियों के प्राचीन कवियों का जीवन चरित और कृतित्व का परिचय दिया जा सकता है।

अहिन्दी प्रान्तों तथा विदेशों में हिन्दी सीखनेवालों की सबसे बड़ी शिकायत यह है कि अपेक्षाकृत कम गद्य की रचनाओं में खड़ी बोली का परिनिष्ठित रूप मिलता है और बहुत-सी पुस्तकों में छापे की भूलों की भरमार रहती है। यह शिकायत निराधार नहीं है; इसकी ओर सम्मेलन का ध्यान जाना चाहिए। स्वाभाविकता लाने के उद्देश्य से हमारे कथाकार अपने कुछ पात्रों की 'बोली' में अपने भाव प्रकट करने देते हैं; बहुत कुछ उस तरह, जिस तरह संस्कृत के नाटकों में कम शिक्षित पात्र प्राकृत में बोलते हैं। खड़ी बोली के इस संक्रांति-काल में सैकड़ों पाठक कोश के सहारे ही हमारी भाषा सीखते हैं; इस तथ्य को ध्यान में रखकर साहित्यिक बन्धुओं से निवेदन है कि वे अपनी संपूर्ण रचना शुद्ध खड़ी बोली में प्रस्तुत करने की कृपा करें। जो अंश बोली में आया करते हैं, वे बहुधा अत्यंत सरस और स्वभाविक होते हैं; उन्हें खड़ी बोली में प्रस्तुत करने से भाषा की भंगिमा तथा व्यंजकता बढ़ जाएगी।

इस तरह हिन्दी प्रान्तों के विशाल भूमिखण्ड में एक परिनिष्ठ, सशक्त, मँजी खड़ी बोली करोड़ों लोगों की सांस्कृतिक भाषा बनकर समस्त देश को आकृष्ट करने में समर्थ हो जाएगी। इस संबंध में जर्मनी का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। हर जर्मन प्रान्त की अपनी-अपनी बोली होती है; उच्च जर्मन अर्थात् राजभाषा किसी भी प्रांत की बोली नहीं है, किन्तु स्कूलों में उसी एक राष्ट्रीय भाषा का परिनिष्ठित रूप सिखलाया जाता है; यही भाषा समस्त सांस्कृतिक तथा साहित्यिक जीवन वहन करती है। समस्त हिन्दी प्रान्तों में विभिन्न बोलियाँ अवश्य जीवित रहेंगी, किन्तु स्कूलों में तथा साहित्य में खड़ी बोली का ही प्रयोग करने से वह उत्तर भारत की संस्कृति का वाहन और धीरे-धीरे दूसरे प्रांतों में संपर्क का माध्यम बन सकेगी।

हिन्दी का व्याकरण अपेक्षाकृत सरल है; इसके अतिरिक्त लिपि तथा उच्चारण में पूर्ण सामंजस्य है; अत: हिन्दी का काम चलाऊ ज्ञान बड़ी सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। कृत्रिम पारिभाषिक शब्दों के निर्माण से अप्रचलित संस्कृत संज्ञाओं के बाहुल्य के कारण आजकल हिन्दी का सरल स्वभाविक रूप संकट में पड़ा है। हमारे प्रतिभाशाली साहित्यकारों की सहायता से यह संकट दूर हो सकता है। कुछ रचनाओं में बेचारी हिन्दी सिर से पैर तक कृत्रिम अलंकारों से लदी निष्प्राण मध्यकालीन कुलवधू बन गयी। वह गुड़ियानुमा रूप उत्तर भारत की संस्कृति का वाहक नहीं बन सकता है; हमारे साहित्यकारों से आशा की जाती है कि वे जनता की भाषा के आधार पर हिन्दी का ऐसा रूप प्रस्तुत करेंगे, जो जीता-जागता हो, जो यौवन के उल्लास से कूट-कूट कर भरा हो, जो अपने सहज-स्वाभाविक सौंदर्य द्वारा समस्त देश को मुग्ध करने में समर्थ हो।

रामकथा के एक प्रसंग के सहारे अपने भाषण का अंत प्रस्तुत करना चाहता हूँ। वाल्मीकि के उत्तरकांड में शाप मोहित हनुमान की कथा इस प्रकार है - बचपन में हनुमान महर्षियों के आश्रमों में निर्भय होकर विचरने लगे और बड़ों की मनाही करने पर भी वहाँ अनेक प्रकार के उत्पात मचाते रहे। इस पर मुनियों ने हनुमान से कहा - तुम जिस बल का आश्रय लेकर हमें सता रहे हो, उसका तुम्हें दीर्घकाल तक पता ही नहीं चलेगा। जब कोई तुम्हें तुम्हारी कीर्त्ति का स्मरण दिला देगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा - 'यदा ते स्मार्यते कीर्त्तिस्तदा ते वर्धते बलम्।' बाद में हनुमान बाली के विरुद्ध सुग्रीव की सहायता करने में असमर्थ हुए, क्योंकि 'न वेत्ता हि बलं सर्वबली सन' - सर्वशक्तिशाली होते हुए भी उन्हें अपने बल का पता नहीं था। अपनी प्राचीन संस्कृति के विषय में अधिकांश भारतीय बुद्धिजीवियों का अज्ञान, एक विदेशी भाषा के प्रति उनका मोह, हिन्दी वालों में अपनी भाषा के प्रति उदासीनता, यह सब देखकर अनायास ही किसी शाप की कल्पना मन में उठती है।

मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि हमारे साहित्यकार अपने पाठकों को देश की कीर्त्ति और गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण दिलाकर उनमें आत्म सम्मान का भाव संचारित करें। तभी हमारा देश अपनी मानसिक दासता की बेड़ियाँ दूर फेंक देगा; प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो जाएगा; अपनी ही भाषा में सोचकर अपनी मौलिक प्रतिभा का प्रमाण दे पाएगा; अन्य देशों के साथ बराबरी के स्तर पर आदान - प्रदान करेगा। भारत को यह सब सम्पन्न करने का बल आत्मविश्वास से प्राप्त हो सकेगा। मुझे दृढ़ विश्वास है - "यदा ते स्मार्यते कीर्त्तिस्तदा ते बर्धते बलम्"

(अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन, कानपुर, १९६७ ई. का डॉ. कामिल बुल्के का उद्घाटन भाषण)

आधुनिक युग के तुलसीदासः फादर कामिल बुल्के

आत्माराम शर्मा

हिन्दुस्तान में उन्हें हिन्दी के अद्वितीय शोधार्थी, अंग्रेजी-हिन्दी कोश के सर्वाधिक लोकप्रिय प्रस्तोता, भारतीय भाषा और संस्कृति के उपासक के अलावा रामकथा के अंतर्राष्ट्रीय विद्वान के तौर पर याद किया जाता है। हिन्दी की सच्चे अर्थों में सेवा करनेवालों में उनका नाम आदर से लिया जाता है तो इसलिए क्योंकि फ़ादर बुल्के का स्वभाव । उनके काम और उनके मन-वचन में संतत्व इस तरह घुल- मिल गया जैसे पानी में दूध। फ़ादर बुल्के के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की झाँकी डॉ. धर्मवीर भारती कुछ यों बयान करते हैं: शुभ्र गौरांग, हल्की नीली आँखें, भूरी सुनहरी छितरी दाढ़ी और गर्दन से पाँवों तक लहराता पादरियों वाला लम्बा चोगा। ऐसी छवि है फ़ादर की!

अखिल भारतीय ओरियेन्टल कानफ्रेन्स, दरभंगा में भाग लेने पहुँचे फ़ादर से किसी गरीब ईसाई ने जब गिरजाघर में पूजा करवा देने का अनुरोध किया तो उन्होने उसे सहर्ष स्वीकार किया। इस प्रसंग का डॉ. भारती आँखों देखा हाल लिखते हैं : बुल्के अब पूजा के वस्त्र धारण करके आ गए हैं। सौम्य तो वैसे ही हैं, इस समय कितने भव्य , कुछ- कुछ रहस्यमय लग रहे हैं। चर्च के अन्दर काफ़ी अँधेरा सा है। पुरोहित हैं बुल्के। दो जानू होकर पूजा में लीन उस विशाल हाल में केवल एक भक्त है जिसने इस समय अँगोछे पर एक फ़टी कमीज भी डाल ली है। इतने बड़े पूरे हाल में केवल एक भक्त और खाली हाल में लगी डेस्कों- बेंचों पर लहराते, दीवार से टकराकर गूँजते बुल्के के मंत्रों जैसे प्रार्थना के स्वर। मैं एक डेस्क के सहारे खड़ा चुपचाप। धार्मिक नेता तो दूर , लगभग नास्तिक ही समझिए! ईश्वर तो है या नहीं यह ईश्वर ही जानता है, ईश्वर के पुत्र जीसस थे, ईश्वर के अवतार राम थे, यह भी ईश्वर ही जाने, मैं तो उस समय यह सोच रहा था कि मनुष्य का आत्मदान, मनुष्य का संकल्प कैसा चमत्कारी होता है कि देशों की सीमा लांघकर कैसे जीवन्त और प्रेरणादायी बना रहता है। कैसे थे येरुशलम के जीसस जो इस सुदूर मिथिला के उजाड़ गिरजाघर में इस समय भी जीवित हो रहे हैं और कैसे थे इस मिथिला में आकर जानकी को ब्याहनेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम जो हजारों साल बाद सात समुद्र पार से अपना घरबार छोड़कर आनेवाले रेवरेण्ड फ़ादर बुल्के के अप्रतिम शोध का विषय बन गए हैं। कौन सी वह भटकन होगी, कौन सी वह प्रेरणा होगी जो सुदूर बेलजियम के इस सुन्दर, भव्य युवक को खींचकर लाई, भारत की मिट्टी से उन्हें एकाकार कर दिया। जीसस में, श्रीराम में जो महान संकल्प शक्ति थी, वही, उसी का एक अंश, उसी का एक ज्वलंत कण इस लम्बे शुभ नीली आँखों वाले व्यक्तित्व में कब, कैसे धधक उठा?

इलाहाबाद के साहित्य जगत में फ़ादर बुल्के आहिस्ता - आहिस्ता कैसे घुलमिल जाते हैं, इसका एक प्रसंग भारती के आलेख में यों है: " प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में एक दिन साइकिल पर सफ़ेद चोगा पहने , नीली आँखें, सुनहरी दाढ़ी ऊँचे माथेवाला एक पादरी आकर सीढ़ियों के सामने साइकिल से उतरता है। हम सबको गहरा कुतूहल है, कौन है, यहाँ क्यों आया है? ज्ञात होता है कि बेलजियम के हैं फ़ादर बुल्के। भाषा विज्ञान का विशेष अभ्यास करने आये हैं। हमलोग पहले संकोच में उन्हें दूर दूर से देखते हैं, फिर संकोच टूटता है,पास जाकर बातें करते हैं। विदेशी समझकर हम अंगरेजी में बोलते हैं और बुल्के सहज मुस्कान के साथ हिन्दी में जवाब देते हैं। पहले हमें धक्का सा लगता है, कुछ शर्म भी आती है और फिर दो ही चार दिन में दूरी खत्म हो जाती है। मैत्री का स्नेह सूत्र जुड़ जाता है। हममें से एक -दो जो ज्यादा रंगीन तबियत के हैं, कभी-कदा हल्के फुल्के शालीन मजाक भी कर लेते हैं। हमारे गिरोह के सर्वस्वीकृत मुखिया बिशन नारायण टंडन का हुक्म जारी होता है "यार इन्हें किसी तरह परिमल का सद्स्य बनाओ।" बुल्के पहले परिमल की गोष्ठियों में अतिथि रूप में आते हैं, फिर उसके सम्माननीय सदस्य बन जाते हैं। शुरू में बोलते कम हैं, मुस्कराते अधिक हैं, धीरे-धीरे पूरी गोष्ठी में रच बस जाते हैं। एक-एक की नस पहचानते हैं, यद्यपि बोलते कम हैं, लेकिन बड़ी मीठी मुस्कानें बिखेरते रहते हैं।

बुल्के से जुड़कर मैं उस एक पूरे संसार से जुड़ गया था जहाँ शाम को बजती हुई चर्च की घंटियाँ थीं, मरियम का वत्सल मुख था, सलीब पर लटके करुणामूर्ति जीसस थे, नीले फूल थे और थे बुल्के के साथी मित्रगण। इलाहाबाद की कितनी ही साहित्यिक दोस्तियाँ विपत्ति के समय झूठी, खोटी निकल गयीं लेकिन सलीब की छाया से बनी ये दोस्तियाँ बरसों तक कायम रहीं। बस पता भर चल जाए कि फ़ादर एक्स्ट्रास या फ़ादर भट्ट बम्बई आए हैं तो सारे काम छोड़कर मन होता था, भाग कर उनके पास पहुँचूँ और पहुँचने पर, मिलने पर दो ही विषय होते थे बातों के,पहला बुल्के, दूसरा अब उजड़ा हुआ इलाहाबाद। बच्चों के बीच घुल मिल जाने का वात्सल्य उन्हें कहाँ मिला था? मरियम की गोद में लेटे शिशु जीसस से या ठुमक चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ से? या शायद दोनों से! और ऐसे क्षणों में फिर वही सवाल मेरे मन को अक्सर मथ जाता था। कौन सी थी वह प्रेरणा जिससे कैशोर्य में ही बेलजियम में अपना भरा- पूरा घरबार छोड़कर मानव सेवा के लिए निकल पड़े होंगे बुल्के? क्या कभी याद नहीं आती घर की? रामचन्द्र तो 14 वर्ष के वनवास के बाद घर लौट आए थे, पर बुल्के तो आजीवन प्रवास ले बैठे और ऐसा प्रवास कि अब भारत, भारत की संस्कृति, भारत की भाषा उन्हें भारतीयों से भी अधिक प्रिय हो चुकी है। सारी एशियाई भाषाओं के साहित्य को छान कर उन्होंने रामकथा के जितने आयाम खोज निकाले हैं वह क्या कोई और कर पाया? हिन्दी-अंग्रेजी कोश जैसा सटीक प्रामाणिक और उपयोगी उन्होंने बनाया क्या कोई और बना पाया? और साथ ही जीसस की सेवा में भी कोई कोताही नहीं। यहाँ तक कि बाइबिल का नया हिन्दी अनुवाद भी कर डाला।"

हिन्दी में महाकवि तुलसीदास ने उनको प्रभावित किया था और

उनके साहित्य का पारायण करते -करते वे स्वयं तुलसीदास हो गए। वस्तुत: वे स्वभाव , कर्म , मन और वाणी से संत थे।

बेल्जियम के रम्सकपैले में जन्में फ़ादर बुल्के ने डॉ.जगदीश गुप्त से हुए अपने वार्तालाप में अपने जन्म स्थान के विषय में रोचक जानकारी दी है: " मैंने उनके जीवन के वे सन्दर्भ भी जानने चाहे जिन्होंने उन्हें मिशनरी बन कर अपने देश से बाहर जाने की प्रेरणा दी । एक सितम्बर 1909 को जन्म, जन्म स्थान- राम मन्दिर। मैं विस्मित हुआ, बेलजियम में राम मन्दिर कहाँ ? उन्होंने लिख कर बताया (राम कपैले- राम चैपल) राम (एक आदमी) का प्रार्थनालय। यह असाधारण संयोग है कि राम कथा जैसी विख्यात कृति के लेखक का जन्म यूरोप में जहाँ हुआ, वहाँ राम शब्द पहले से विराजमान था चाहे वह किसी सामान्य जन का नाम ही क्यों न रहा हो।"

फ़ादर बुल्के का शोध प्रबंध राम कथा : उत्पत्ति और विकास अपने विषय की अभूतपूर्व कृति है। भारतवर्ष में उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक राम की भक्ति धारा प्रवाहित है लेकिन बुल्के जी ने दक्षिण पूर्व के एशियाई देशों में अजस्र प्रवाहित राम भक्ति की धारा को उस धारा के साथ जोड़कर उसे और भी पावन बना दिया। उनके ग्रंथ ने राम कथा के पटल को कितना अधिक व्यापक बना दिया, इसका अनुमान ग्रंथ को पढ़कर ही लगाया जा सकता है। यह ग्रंथ मात्र उनके लिए महत्व पूर्ण और उपयोगी नहीं है जो भगवान राम के श्रद्धालु भक्त हैं , वरन शोधकर्ताओं तथा इतिहास प्रेमियों के लिए भी है। हमारे देश में कितनी रामायणें प्रचलित हैं, वे कब से कब की लिखी हैं, उनमें क्या-क्या अंतर है, वह अंतर क्यों है, आदि आदि तथ्यों की पूरी जानकारी कितने भारत वासियों को है? विदेशों में राम कथा के उद्भव और विकास की कहानी को तो और भी कम लोग जानते हैं । ये सारे तथ्य बुल्के जी की कृति में हैं। इसके अतिरिक्त उसकी विशेषता यह भी है कि वह शुद्ध हृदय से लिखी गई है। साथ ही हृदय की प्रधानता के कारण वह खूब लोकप्रिय भी हुई है।

महादेवी वर्मा ने उनके व्यक्तित्व का अद्भुत शब्द चित्र खींचा है "- सन्यासी का विद्वान होना अनिवार्य नहीं है और न उसका लेखक होना अनिवार्य है। परन्तु जब साधना और विद्वत्ता के साथ सृजनशील लेखक होने की विशेषताएँ एकत्र हो जाती हैं तब यह त्रिवेणी विस्मित और पवित्र करनेवाली हो जाती है। मेरे आदरणीय अनुज कामिल बुल्के भी ऐसे ही व्यक्ति हैं।"

फ़ादर बुल्के की साहित्यिक उपलब्धियों को किसी चौखट में नहीं बाँधा जा सकता। एक ओर गहन शोधकार्य और दूसरी ओर अंग्रेजी-हिन्दी कोश से लेकर ईसाई धर्मग्रंथों के प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद तक की साहित्यिक यात्रा उनकी क्षमता तथा रुचि-वैचित्र्य की प्रस्तावना बन चुकी थी। इस विदेशी विद्वान ने भारत भक्त बनकर रामकथा और संत तुलसीदास पर अपनी इतनी गहरी निष्ठा व्यक्त की कि जनता को यह विश्वास होने लगा कि फ़ादर कामिल बुल्के कहीं तुलसीदास के अवतार तो नहीं हैं। वाल्मीकि से तुलसी और तुलसी से कामिल बुल्के की परम्परा रामकथा की एक महत्वपूर्ण श्रृंखला सी ज्ञात होने लगी।

हिन्दी के प्रति फ़ादर बुल्के की अपार श्रद्धा थी। अंग्रेजी भाषा के जनव्यापी संस्कारों को मिटाते हुए उनका कथन है कि "हिन्दी तो महारानी है और अंग्रेजी उसकी सेविका। सेविका को महारानी बनाने की कुत्सित चेष्टा जितनी जल्दी समाप्त हो, भारत के व्यक्तित्व का निर्माण उतनी ही शीघ्रता से होगा।"

हिन्दी के भविष्य के प्रति बाबा बुल्के काफ़ी आशावान थे। उन्होंने कहा है - "जहाँ तक मेरा प्रश्न है , मैं हिन्दी के उज्जवल भविष्य के विषय में पूर्ण आश्वस्त हूँ। मेरा आशावाद निराधार नहीं है। मैं हिन्दी के अभ्यन्तर सामर्थ्य, हिन्दी भाषा भाषियों की समझदारी, अन्य भाषा भाषियों के देशप्रेम और समस्त भारतीय नागरिकों के स्वाभिमान पर भरोसा रखता हूँ। हिन्दी न केवल देश के बीस करोड़ लोगों की सांस्कृतिक भाषा है, बल्कि बोलने समझने की संख्या की दृष्टि से वह दुनिया की तीसरी भाषा है। वह भारत के बाहर भी ,न केवल एशिया बल्कि कई अन्य महाद्वीपों में फैल गई है, अर्थात लंका, बर्मा, मलाया, इण्डोनेशिया, फ़ीजी, मारीशस, दक्षिण और पूर्व अफ़्रीका, ग्याना , वेस्ट इंडीज और त्रिनिदाद में। इस संख्यात्मक तथा भौगोलिक महत्व के अतिरिक्त नमनीयता, व्यंजकता, समृद्धि, सरलता आदि अभ्यंतर गुण हिन्दी के उज्जवल भविष्य में सहायक हैं। भारत के सभी धर्मों तथा विभिन्न भाषा-भाषियों ने हिन्दी के विकास में योगदान दिया है। वह किसी विशिष्ट वर्ग, प्रदेश या सम्प्रदाय की भाषा न होकर भारतीय जनता की भाषा है।"

17 अगस्त 1982 को उनका निधन हुआ। हिन्दी और भारत के लिए यह अपूरणीय क्षति है । किन्तु विष्णु प्रभाकर के शब्दों मे " फ़ादर अब नहीं हैं। ईसा भी नहीं हैं, पर अपने प्रियजनों की स्मृति में बार-बार जन्म लेते हैं। वही जन्म लेना जीने की शक्ति देता है, देता रहेगा। सुदूर बेल्जियम में जन्म लेकर जो राम को खोजता भारत आ पहुँचा और भारत का होकर रह गया। ऐसे "पागल" प्रेम दीवाने क्या मर सकते हैं?"

सन्दर्भ : (डॉ.कामिल बुल्के स्मृति ग्रंथ : सम्पादक डॉ. दिनेश्वर प्रसाद एवं डॉ. श्रवण कुमार गोस्वामी)

चित्र में यू. के. गीतान्जलि संघ के सदस्यों का हिन्दी साहित्य सभा द्वारा ४ जून २००९ में भव्य स्वागत

हिन्दी चेतना के संपादक श्री श्याम त्रिपाठी यू. के. की संस्था ' गीतांजलि' के अध्यक्ष डॉ. कृष्ण कुमार के साथ कैनेडा में प्रथम बार – ४ जून २००९

भारतीय कौंसिलावास में कवि सम्मेलन जून २७, २००९

पैनोरमा इंडिया की १०वीं वर्षगाँठ के अवसर पर टोरंटो, भारतीय कौंसिलावास में, शनिवार, २७ जून २००९ को डॉ. देवेन्द्र मिश्रा जी के नेतृत्व में एक कवि सम्मेलन आयोजित किया गया। उपस्थित लोगों में ,कला पिलरस्ती पैनोरमा इंडिया के सहयोगी अधिकारी, तथा सहयोगी फाउण्डर सदस्य देवेन्द्र मिश्रा जो इस कार्यक्रम के संचालक थे। भाग लेने वाले कवि डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, प्राशर गौड़, विजय विक्रान्त, सुधा मिश्रा , भगवत शरण श्रीवास्तव, राकेश तिवारी, जावेद दैनिश, सुमन घई, मोहम्द अली भैडू ,विद्याधर, अरुणा–भटनागर, सुरेन्द्र पाठक, कैलाश भटनागर, सरोज भटनागर थे। कवि सम्मेलन बहुत ही रोचक रहा।

हिन्दी –चेतना ब्यूरो

PRIYAS
Specializing In Indian Groceries
DENISON CENTRE
1661 DENISON STREET
UNIT T-15
MARKHAM, ONTARIO
L3R 6E4
TEL: 905-944-1229
FAX: 905-944-9600

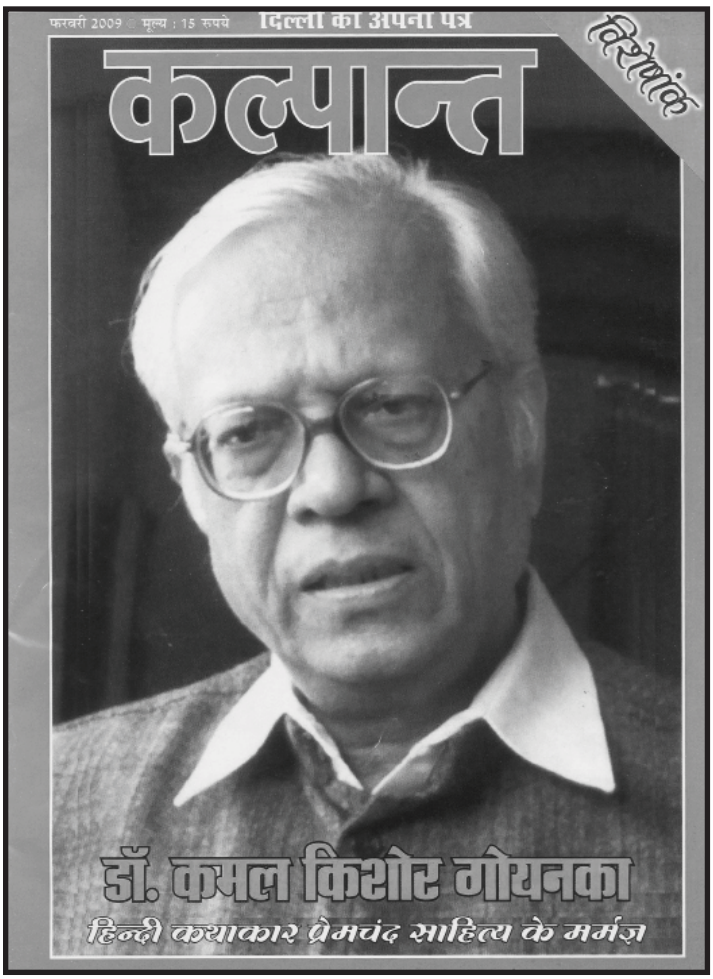

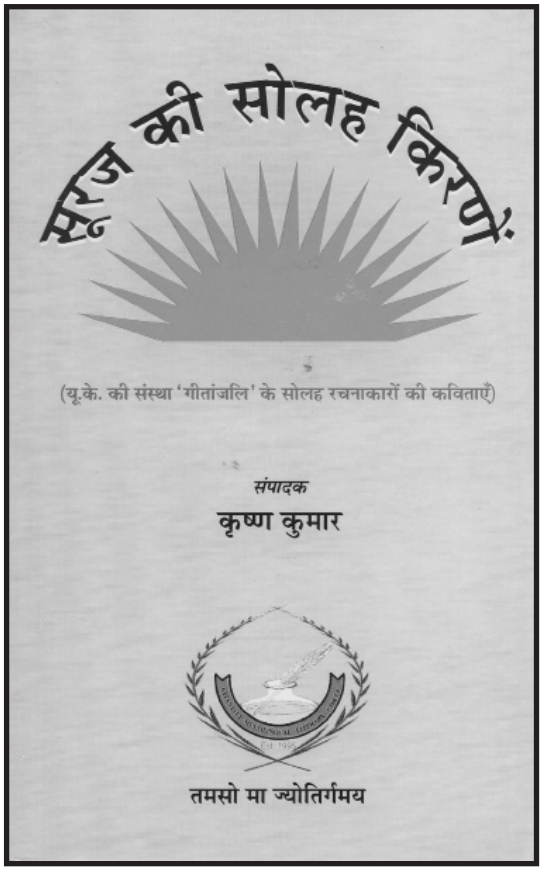

साहित्य समाचार

डॉ. अमर ज्योति 'नदीम' के प्रथम ग़ज़ल संग्रह

'आँखों में कल का सपना है' का लोकार्पण पद्मभूषण गोपाल दास नीरज ने होटल 'मेलरोज़ इन' में किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता जयपुर से पधारे प्रख्यात शायर लोकेश कुमार सिंह'साहिल' ने की। कार्यक्रम का शुभारम्भ गीतकार बनज कुमार 'बनज' की सरस्वती वन्दना से हुआ।

श्रीमती अर्चना'मीता', प्रो.आलोक शर्मा और पुश्किन द्वारा अतिथियों का माल्यार्पण द्वारा अभिनन्दन किया गया। विमोचन करते हुए पद्मभूषण गोपाल दास नीरज ने कहा कि नदीम की ग़ज़लों में ग़ज़ल के सभी तत्त्व विद्यमान हैं और वे एक समर्थ शायर व गज़लकार हैं। इस अवसर पर नीरज ने ग़ज़ल की विकास यात्रा पर प्रकाश डालते हुए ग़ज़ल को आधुनिक काव्य की एक लोकप्रिय विधा बताया और अपने गीत व ग़ज़ल भी सुनाये।

नदीम ने अपने लोकार्पित संग्रह से कुछ गज़लें पढीं और मन-मोहन ने संग्रह की एक ग़ज़ल की संगीतमय प्रस्तुति की। नदीम की ग़ज़ल 'हम जिये सारे खुदाओं, देवताओं के बगैर' को ख़ूब सराहना मिली।

जयपुर से पधारे ख्यातिप्राप्त ग़ज़लकार व समीक्षक अखिलेश तिवारी, अरुणाचल प्रदेश से पधारे डॉ.मधुसूदन शर्मा, व हिन्दी साहित्य के प्रोफेसर प्रेमकुमार ने संग्रह के बारे में अपने-अपने समीक्षात्मक आलेख भी पढ़े. प्रेम पहाड़पुरी व सुरेन्द्र सुकुमार ने नदीम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला।

समारोह के उत्तरार्द्ध में एक कवि-गोष्ठी आयोजित की गई जिसमें अशोक अंजुम(अलीगढ़),बनज कुमार बनज(जयपुर), अखिलेश तिवारी(जयपुर), महेश चन्द्र गुप्त 'खलिश'(दिल्ली), राजकुमार 'राज'(दिल्ली) और लोकेश कुमार सिंह 'साहिल'(जयपुर) ने कविता पाठ किया। समारोह के अंत में संग्रह के प्रकाशक 'अयन प्रकाशन' के स्वामी भूपाल सूद ने धन्यवाद ज्ञापन किया। प्रख्यात साहित्यकार, साहित्यिक पत्रिका 'अभिनव प्रसंगवश' के संपादक एवं स्थानीय धर्मसमाज महाविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रोफेसर वेदप्रकाश अमिताभ ने कार्यक्रम का संचालन किया।

■ चित्रकाव्य-कार्यशाला

हाय हाय रे! यह मजबूरी
मो का उठावन पड़ती बोरी
ईश्वर कहां है तेरा न्याय
कोई खुन पसीना बहावै
कोई बिना कुछ किये ही मौज उड़ावै।
हाय हाय रे! यह मजबूरी

डैनी कावल (कैनेडा)

●

बोरी ढोते फिरते हम, लाला लाभ कमाए।
हम खुश है गर रात को दो रोटी मिल जाए।
वक्त कभी तो बदलेगा, फिरेंगे दिन अपने।
सबको मिलेगा पेट भर पूरे होंगे सपने।

महेन्द्र कुमार देव (अमेरिका)

●

रेत की बोरी ढो ढो कर बाँध बनाएँ हम।
बढ़ती बाढ को रोक लें, है बाहों में दम।
हाथ बढाओ साथी तुम, अपना घर बार बचाना।
एक एक दो ग्यारह होते, फिर किस बात का ग़म।

उषा देव (अमेरिका)

●

मेहनत की रोटी
कमाते और खाते है,
जाने फिर मज़दूर हम
क्यूँ कहलाते है।

किरन सिंह वाराणसी (भारत)

किस-किस के पेट की है रोटियां, जो ढो रही है इनकी पीठ
किस खेत में था उगा अनाज, किसने डाला होगा बीज
किस सागर से उड़ कर बादल, उन खेतों पर जा बरसा
इन दानों से भूख मिटाने, किस किस का मन था तरसा
चांद की उसपर पड़ी चांदनी, पड़ी स्वर्ण-सी सुंदर धूप
धीरे धीरे हरी फसल परे दे दीया अपने जैसा रूप
कहां कहां से आया झोको, खड़ी फसल परे लहराया
पकी फसल देख किसाने ने, कौनसा गीत था गाया
पर हर दाने पर लिख्खा है, उस खाने वाले का नाम
चोरी कर या मांग कर खाए, या खाए वह दे कर दाम
कोई दाना बीज बनेगा, धरती की कोख मे जाएगा
मिटा देगा वह अपनी हस्ती, पर सौ सौ दाने उपजाएगा
यूं युग-युग से मिट रही है, इन्सानों के पेट की भूख
कौन चलाता है यह चक्कर, किसकी सारी सूझ-बूझ?

सुरेन्द्र पाठक (कैनडा)

●

दूसरों का बोझ
अपनी पीठ पर
लिये जा रहे है,
पेट की भूख के लिए
बैलों सी मेहनत
किये जा रहे है।

अमित कुमार सिंह (कैनेडा)

■ पाठकों की प्रतिक्रिया अपेक्षित है!

दु:खद समाचार

हिन्दी चेतना के सबसे पुराने सदस्य वास्ती राम घई अब वे नही है हमारे पास। चित्र काव्यशाला के हर चित्र पर भेजते थे रचनाएं हमें दु:ख है कि वे इस बार कुछ न लिख पाये। हों जहाँ भी वे मिले उनकी आत्मा को शान्ति कवि हृदय को हो सद्गति प्राप्ति।

... चित्रकाव्यशाला की ओर से

■ चित्रकाव्य-कार्यशाला

इस चित्र को देखकर
आपके मन में जो भी भाव आयें
उन्हें अधिक से अधिक छः
पंक्तियों के अन्दर व्यक्त करके भेजें।

RAMA BAHRI

416-565-2596

Win a BMW car

When you buy or sell through me
you have a chance to win
a new BMW

GTA Realty Inc., Brokerage
Bus: 416.321.6969
Fax: 416.321.6963
206 - 1711 McCowan Rd., Scarborough, ON. M1S 3Y3

HomeLife GTA
GTA Realty Inc., Brokerage

फादर कामिल बुल्के के रामकथा-सम्बन्धी शोध

डॉ.मृदुला प्रसाद

फादर कामिल बुल्के हिंदी भाषा के साधक थे। 1974 में पद्म भूषण से सम्मानित, बहुभाषाविद फादर बुल्के ने एक अवसर पर गर्व के साथ कहा था कि जो भाषा मैं सबसे अच्छी तरह जानता हूँ, वह हिंदी है। महान विद्वान् साहित्यकार की यह उक्ति उनकी निश्छलता है कि वह अपनी मातृभाषा फ्लेमिश से ज़्यादा सम्मान हिंदी को देते हैं और भारत वासियों के मन में भी हिंदी के प्रति सम्मान कायम करना चाहते हैं। अपने भाषणों में वे हिंदी को राजरानी और माथे की बिंदी आदि विशेषणों से हमेशा संबोधित करते थे।

भारत आने पर जिस कवि ने उन्हें अभिभूत किया वह तुलसीदास थे। उनकी विश्वप्रसिद्ध पुस्तक "रामकथा: उत्पत्ति और विकास" (1950) उनका शोधप्रबंध है जिसने पुस्तक का आकार ग्रहण करने के बाद उन्हें दुनिया भर में प्रसिद्धि दिलाई। इस पुस्तक में रामकथा के इतिहास और स्वरुप-सम्बन्धी प्रचलित मतवादों, रामकथा की परम्पराओं, इसके अर्न्तराष्ट्रीय प्रसार और प्रभाव का पहली बार उद्घाटन किया गया है।

राम कथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लेखक का विचार है कि प्राचीन काल से ही राम की कथा मौखिक और लिखित दोनों रूपों में प्रचलित थी। वैदिक साहित्य में राम नामक एक राजा की चर्चा है। इसी प्रकार 'दशरथ जातक महाभारत'और बौद्ध ग्रंथों में भी रामकथा का बार-बार उल्लेख हुआ है परन्तु, वाल्मीकि ने प्रचलित रामकथा को सुसंबद्ध काव्य का रूप प्रदान किया।

भारत के विभिन्न भागों के अतिरिक्त अन्य देशों में भी रामकथा की विभिन्न परम्पराओं से सम्बंधित शोध कार्य ही फादर बुल्के की उपलब्धि है। उन्होंने अपनी पुस्तक में रामकथा की वाल्मीकिय ,बौद्ध ,जैन, तिब्बती, खोतानी और दक्षिण एशियाई परम्पराओं पर विचार किया है। इनमे बौद्ध और जैन परम्पराएं ,वाल्मीकिय परम्पराओं की तरह भारतीय है।
इस परंपरा की व्यापकता संस्कृत से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं तक देखी जा सकती है। फादर बुल्के के शोध के अनुसार संस्कृत की रामकथा में रामावतार की भावना ईस्वी सन् से पहले की है किन्तु, राम की भक्ति और उपासना की परंपरा इसके बाद की है। गुप्त काल में राम की पूजा प्रचलित थी तथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा वराह मिहिर की 'वृहत्संहिता' में राम की प्रतिमा के निर्माण सम्बन्धी नियमों का उल्लेख है।
इस प्रकार दक्षिण भारत में आलवार साहित्य में सबसे पहले राम भक्ति का उल्लेख मिलता है।
साथ ही साथ हरिवंश 'कलिका पुराण', अध्यात्मरामायण ,'योगवशिष्ठ',अद्भुतरामायण , 'आनंद रामायण'आदि में रामकथा का उल्लेख मिलता है। फादर बुल्के के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं के राम साहित्य की कथा सामग्री के श्रोतों की जानकारी की दृष्टि से उपर्युक्त पुस्तकें कितनी उपयोगी हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में बारहवीं शताब्दी की तमिल रामायण सबसे प्राचीन है। इसके रचयिता कंबर हैं। इसका मुख्य आधार वाल्मीकि-रामायण है ।फादर बुल्के के अनुसार इस पर वाल्मीकि के दक्षिणात्य पाठ के कई प्रसंगों का प्रभाव पड़ा है। कालक्रम के विचार से रंगनाथ कविकृत द्विपद रामायण आधुनिक भारतीय राम साहित्य का दूसरा प्राचीन लोकप्रिय काव्य है। यह तेलुगु में लिखित है लेकिन, इसमें उत्तरकाण्ड की कथावस्तु नहीं थी जिसे बाद में काचविभुद तथा विट्ठलराजू ने उत्तर रामायण लिखकर पूरा किया। प्रसिद्धि के विचार से रंगनाथ रामायण का उल्लेख किया गया है लेकिन, इसके पहले से भी तिकन्न कवि की निर्वाचोत्तर रामायण (13वीं शताब्दी) मिलती है। बाद के रामायण काव्यों की परंपरा भी समृद्ध है। तेलुगु के पश्चात् मलयालम के सबसे पुराने रामकाव्य 14वीं शताब्दी के हैं। उनमें राम कवि का "राम कवि का इरामचरित" और अच्चची पिल्लै का "रामकथापाट्टू" प्रसिद्ध हैं। इनकी विषय-वस्तु वाल्मीकि के युद्ध काण्ड तक सीमित है। केरल में भी वर्माकृत अध्यात्म रामायण का अनुवाद विशेष प्रसिद्द है। लेकिन, रामकाव्य के सम्बन्ध में फादर का कहना है कि मलयाली कवियों ने रामकथा के वर्णन में किसी मौलिकता का प्रदर्शन नहीं किया है। कन्नड़ रामकथा साहित्य की भी दो परम्पराएं- जैन और वाल्मीकीय हैं । दक्षिण भारत के अतिरिक्त रामकथा का वर्णन आदिवासी रामकथा में भी प्रचलित है। रामकथा के चतुर्थ भाग में इस कथा के बिरहोर, मुंडा आदि अनेक रूप इस पुस्तक में प्रस्तुत किए गए हैं।

द्रविड़ भाषाओं की रामकथा परंपरा का इतिहास आधुनिक आर्यभाषाओं की रामकथा परंपरा से अधिक पुराना है। यह तब लिखा गया जब रामभक्ति की शुरुआत और प्रचार के साथ-साथ रामकथा का विकास अंतिम परिणति तक पहुँच चुका था। फादर बुल्के के अनुसार आर्यभाषाओं के रामसाहित्य में सबसे पहले सिंहली रामकथा लिखी गयी। इसका प्रारंभ 5वीं शताब्दी में माना जाता है किन्तु इसका पहला वर्णन 15वीं शताब्दी के सिंहली साहित्य में मिलता है। इसमें जो कथा मिल-ाती है उनमें पहली प्रधान कथा प्रथम सिंहल राजा विजय और नागकन्या कुवैणी की है और दूसरी सीता त्याग की है।
इस रामकथा में कई नवीनताएँ हैं ,जैसे राम का अकेले वनवास , उनकी अनुपस्थिति में सीता का हरण ,हनुमान के स्थान में बालि का महत्त्व आदि।

भारत के अतिरिक्त राम-काव्य परंपरा तिब्बती, तुर्किस्तानी ,दक्षिण-पूर्वी एशियाई और पश्चिमी भाषा में भी प्राप्त होती है। तिब्बती रामायण का प्रारंभ रावण चरित से होता है। इसमें विष्णु दशरथ से यह प्रतिज्ञा करते हैं कि वे उनके पुत्र के

रूप में जन्म लेंगे। इसमें रावण अपनी कन्या सीता को अनिष्ट के भय से समुद्र में फेंक देता है। इस रामायण में अशोक वन से सीता हरण के बाद की घटनाएँ वाल्मीकी के अनुसार हैं।

इस प्रकार राम की देशी-विदेशी परम्पराओं से सम्बंधित फादर कामिल बुल्के का विस्तृत अध्ययन इस बात का विवेचन करता है कि रामकथा के घटना-प्रसंगों और पात्रों से स्वरुप में अनेकानेक परिवर्तन हुए है लेकिन, इसके बावजूद मौलिक एकता का श्रेय वाल्मीकी को है। फादर बुल्के कहते है-"विश्व साहित्य के इतिहास में शायद ही किसी ऐसे कवि का प्रादुर्भाव हुआ हो, जिसने भारत के आदि कवि के समान इतने व्यापक रूप से परवर्ती साहित्य को प्रभावित किया हो"।

RAI GRANT INSURANCE BROKERS

Business • Life • Auto • Home

ENOCH A. BEMPONG, BA (Econ)

Account Exexutive

260 Town Centre Boulevard, Suite 101, Markham, ON L3R 8H8

Tel: 905-475-5800 Ext. 283 1-800-561-6195 Ext. 283

Fax: 905-475-0447 ebempong@raigrantinsurance.com

Cell: 905-995-3230 www.raigrantinsurance.com

डॉ. कामिल बुल्केः विश्व हिन्दी सम्मेलन, नागपुर में

डॉ. प्यारेलाल शुक्ल

10-1-1975 से तारीख 14-1-1975 तक महाराष्ट्र में स्थित नागपुर शहर में विश्व हिन्दी सम्मेलन आयोजित हुआ था। इस सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने किया था और सभापतित्व मारीशस के प्रधानमंत्री सर शिव सागर रामगुलाम ने। श्री अनंत गोपाल शेवड़े इसके महासचिव थे और स्वागताध्यक्ष थे महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री वसंत राव नाइक। यह सम्मेलन राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की ओर से आयोजित किया गया था। फ़ादर कामिल बुल्के विश्व हिन्दी सम्मेलन के सम्मानित अतिथि के रूप में आमंत्रित हुए थे। अत्यंत विशाल जन-समूह के सामने मंच पर देश के प्रमुख नेताओं और शीर्ष साहित्यकारों के बीच बैठे हुए वे सबके आकर्षण के केन्द्र बन रहे थे। चर्च सेवा के सफ़ेद लम्बे गाउन के ऊपर गले में उन्होंने सफेद दुपट्टा डाल रखा था, जिससे दूर से वे विशुद्ध भारतीय सन्त जैसे लगते थे और भाषण देते हुए तो वे भारतीय संस्कृति के प्रतीक लगते थे।

कार्यक्रम का प्रथम दिन उद्घाटन का था। दूसरे दिन विदेशी प्रतिनिधियों ने अपने -अपने देशों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन और प्रयोग की स्थिति का परिचय देते हुए हिन्दी के विषय में अपने विचार प्रकट किए। तीसरे दिन विश्व मानव की चेतना, भारत और हिन्दी विषय पर चुने हुए विद्वानों के भाषण हुए, जिसमें फ़ादर बुल्के ने श्रीराम के जीवन मूल्यों पर प्रकाश डाला एवं यह स्थापना दी कि भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है, मूल्यों का संतुलन। वह भौतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का संतुलन चाहती है।

चौथे दिन विशिष्ट विद्वानों एवं विदेशी अतिथियों का सम्मान किया गया एवं उन्हें श्रद्धा सुमन भेंट किए गए। इस समारोह में फ़ादर बुल्के को बेलजियम के प्रतिनिधि के रूप में सम्मानित किया गया। आयोजक ने उनका नाम पुकारते समय कहा था कि वे बेलजियम और भारत, दोनों देश के हैं। फ़ादर ने श्रद्धा सुमन ग्रहण कर कहा कि "मुझे इस सम्मेलन में अपनी मातृभूमि का प्रतिनिधि माना गया है.... मैं अपनी मातृभूमि का अनादर नहीं करूँगा।" फ़िर उन्होंने हर्ष-गदगद होकर कहा , " मैं इस सम्मान को प्राप्त करने चालीस वर्ष पहले अपनी मातृभूमि से यहाँ आया हूँ।"

सभा की कार्यवाही के बाद फ़ादर जब तक सभा स्थली पर रहते थे, वे उत्सुक दर्शकों और हस्ताक्षर लेनेवालों से घिरे रहते थे। इतने लम्बे कार्यक्रम की थकान के बाद भी वे सबसे प्रेम पूर्वक मिल रहे थे।

पाँचवें दिन का कार्यक्रम पवनार नामक स्थान में सन्त विनोबा के आश्रम-दर्शन और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के प्रागंण में विश्व हिन्दी विद्यापीठ के शिलान्यास एवं तुलसी की प्रतिमा के अनावरण का था।

विनोबा से भेंट करने के बाद प्रमुख व्यक्तियों ने एक-एक मिनट के समय में अपने विचार व्यक्त किए। फ़ादर भी बोले। उनके भाषण का अंतिम अंश था... "हिन्दी की सेवा करूँगा, जब तक शरीर में प्राण हैं।"

तुलसी की प्रतिमा का अनावरण फ़ादर बुल्के के हाथों से हुआ। प्रतिमा अनावरण के पश्चात सभा हुई जिसमें फ़ादर मुख्य वक्ता के रूप में भाषण देने को बुलाए गए। फ़ादर के प्रति आदर सूचक सम्बोधनों का प्रयोग करते समय जब आयोजक ने कहा, "बेलजियम के विद्वान ....." तो वाक्य के बीच में ही श्रोताओं के बीच से उठकर कलकत्ता विश्वविद्यालय के डॉ. विष्णुकान्त शास्त्री चिल्ला उठे, "उन्हें बेलजियम का न कहिए, वे भारत के हैं।" श्री शास्त्री का यह उदगार स्वाभाविक था; क्योंकि फ़ादर अपने मन-प्राण से भारतीय हैं। किन्तु आयोजक का कथन और इसके साथ-साथ उसके पहले दिन की सभा में उन्हें बेलजियम का प्रतिनिधि माना जाना भी औचित्य रखता है। भारतीय संस्कृति , प्रेम , श्रद्धा और कृतज्ञता के गुणों से आपूरित है। अतः कोई भारतीय व्यक्ति फ़ादर बुल्के को स्मरण करते समय उनकी जन्मभूमि बेलजियम को कृतज्ञतापूर्वक स्मरण न करे यह कैसे सम्भव है? खैर, फ़ादर बोलने के लिए खड़े हुए। भाषण संक्षिप्त ही रहा, जिसमें उन्होंने तुलसी के महान कवित्व एवं भक्ति भावना पर प्रकाश डाला। भाषण में उनकी व्यक्तिगत भावनाओं का स्पर्श भी था। उन्होंने कहा , "तुलसी विश्व के महानतम कवियों में से एक हैं।" फ़िर उन्होंने हँसते हुए कहा , "तुलसी ने कहा है- सबहीं नचावत राम गोसाईं; किन्तु मैं कहता हूँ- मोहि नचावत तुलसी गोसाईं। प्रत्येक वर्ष तुलसी का संदेश सुनाने के लिए बहुत दौड़ा करता हूँ।" भाषण का अंतिम वाक्य सबसे अधिक मार्मिक था। तुलसी की भक्ति-भावना के प्रमुख तत्व आत्मदैन्य एवं समर्पण शीलता की व्याख्या करते हुए उन्होने कहा, "मैं तुलसी का हाथ पकड़कर भगवान की ओर जा रहा हूँ।"

(सौजन्य : कामिल बुल्के स्मृति –ग्रन्थ)

मारिशास विश्व हिन्दी सम्मेलन में फादर कामिल बुल्के, तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री रामगुलाम के साथ हाथ मिलाते हुये।

१५ वाँ कथा यू.के. सम्मान समारोह

दीप्ति कुमार

उपरोक्त चित्र में :-

बैठे हुए बाएँ से मोहन राणा, ज़कीया ज़ुबैरी, टोनी मैकनल्टी, मधु अरोड़ा, श्रीमती मोहन राणा। खड़े हुए: आनंद कुमार, तेजेन्द्र शर्मा, विभाकर बख़्शी, के.सी. मोहन, रवि शर्मा, इंदिरा, अजित राय

ब्रिटेन के सांसद और पूर्व आंतरिक सुरक्षा राज्य मंत्री टोनी मैकनल्टी ने ब्रिटिश संसद के हाउस ऑफ कॉमन्स में आयोजित एक गरिमामय समारोह में हिन्दी के सुपरिचित कथाकार भगवानदास मोरवाल को उनकी अनुपस्थिति में 15 वाँ अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान प्रदान किया। किसी कारणवश मोरवाल पुरस्कार लेने लंदन नहीं आ सके। यह सम्मान मोरवाल के नवीनतम उपन्यास 'रेत' (राजकमल प्रकाशन) के लिये दिया गया। उनकी ओर से यह सम्मान उनके मित्र और दिल्ली के सांस्कृतिक पत्रकार अजित राय ने प्राप्त किया। इस अवसर पर उन्होंने ब्रिटेन के हिन्दी लेखकों के लिये स्थापित 'पद्मानंद सम्मान' ब्रिटिश हिन्दी कवि मोहन राणा को उनके ताज़ा कविता संग्रह 'धूप के अन्धेरे में ' (सूर्यासेत्र प्रकाशन) के लिये प्रदान किया। इस सम्मान का यह दसवां साल है।

टोनी मैकनल्टी ने लंदन एवं ब्रिटेन के अन्य क्षेत्रों से बड़ी संख्या में आए एशियाई लेखकों और ब्रिटिश साहित्य प्रेमियों को संबोधित करते हुए कहा कि भाषा संगीत की तरह होती है। यदि आप किसी दूसरे की भाषा समझते हैं तो आप ज़िन्दगी की लय को समझ सकते हैं। दूसरों की भावनाओं को समझ सकते हैं। भाषा में आप सपने रच सकते हैं। इस तरह भाषा के माध्यम से आप मनुष्यता तक पहुँच सकते हैं। उन्होंने हिन्दी में अपना भाषण शुरू करते हुए कहा कि भाषाओं के माध्यम से हम सभ्यताओं के बीच संवाद स्थापित कर सकते हैं। भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं बल्कि आपकी पहचान होती है। उन्होंने कहा कि कथा यू.के. पिछले कई वर्षों से ब्रिटेन में बसे एशियाई समुदाय के बीच भाषा और साहित्य के माध्यम से संवाद स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

हाउस ऑफ लॉर्डस में भारतीय मूल के सांसद लॉर्ड तरसेम किंग ने कहा कि ब्रिटेन जैसे देश में सारी भाषाएँ एक दूसरे की पूरक हैं। अंग्रेज़ी जानना हिन्दी का विरोध नहीं है। उन्होंने कहा कि कथा यू.के. भाषा और साहित्य के क्षेत्र में काम कर रही संस्थाओं के बीच समन्वय का काम कर रही है।

लेबर पार्टी की काउंसलर और कथा यू.के. की सहयोगी संस्था एशियन कम्यूनिटी आर्ट्स की अध्यक्ष ज़कीया ज़ुबैरी ने भगवानदास मोरवाल के पुरस्कृत उपन्यास 'रेत' का परिचय देते हुए कहा कि लेखक ने क़ाफी शोध के बाद एक ऐसी कथा पेश की है जिसका समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाना चाहिये। इस उपन्यास में कंजर जाति की स्त्रियों के जीवन संघर्ष का ऐसा प्रामाणिक चित्रण है कि पाठक चकित रह जाता है।

लंदन में नेहरू सेंटर की निदेशक मोनिका कपिल मोहता ने कहा कि कथा यू.के. को अब ब्रिटेन के साथ साथ यूरोप, अमरीका और अन्य देशों में भी अपनी गतिविधियों की नेटवर्किंग करनी चाहिये। भारतीय उच्चायोग में मंत्री समन्वय आसिफ इब्राहिम ने कहा कि भाषा एवं संस्कृति के बिना जीवन अधूरा है। इसे बचाने की हर संभव कोशिश करनी चाहिये। उच्चायोग के हिन्दी एवं संस्कृति अधिकारी आनंद कुमार ने कथा यू.के. के प्रयासों की सराहना करते हुए विदेशों में हिन्दी के नाम पर हो रही गतिविधियों में गंभीरता और गुणवत्ता लाने की वकालत की।

कथा यू.के. के महासचिव तेजेन्द्र शर्मा ने 15 वर्षों की कथा-यात्रा को याद करते हुए कहा कि मुंबई से शुरू हो कर हम ब्रिटेन की संसद तक पहुंचे हैं। अब हम अपनी गतिविधियों को नया विस्तार देना चाहते हैं। कथा यू.के. आने वाले दिनों में विदेशों में और भारत में हिन्दी भाषा और साहित्य से जुड़े कई महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों का आयोजन करने जा रही है। इससे विश्व स्तर पर हो रहे निजी प्रयासों की नई नेटवर्किंग सामने आएगी। इस अवसर पर मोहन राणा ने सम्मान स्वीकार करते हुए अपनी नई कविताओं का पाठ किया। पुरस्कृत उपन्यास 'रेत' उपन्यास पर सुशील सिद्धार्थ एवं मोहन राणा के काव्य संकलन 'धूप के अन्धेरे में' पर गोबिन्द प्रसाद के आलेखों का पाठ किया गया। इंदु शर्मा की पुत्री दीप्ति कुमार ने भगवानदास मोरवाल और ललित मोहन जोशी ने मोहन राणा का परिचय दिया। मधु अरोड़ा (मुंबई) ने कथा यू.के. 15 वर्षों की यात्रा का विवरण दिया। सरस्वती वंदना जटानील बैनरजी ने प्रस्तुत की। कायर्क्रम का संचालन किया सनराइज़ रेडियो के लोकप्रिय कलाकार रवि शर्मा ने।

कथा यू.के. के इस आयोजन में हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, गुजराती एवं अंग्रेज़ी भाषा के लेखक बड़ी संख्या में शामिल हुए। पूर्व पद्मानंद सम्मान विजेता डॉ. गौतम सचदेव, दिव्या माथुर एवं गोविन्द शर्मा के अतिरिक्त समारोह की गरिमा बढ़ाने के लिये मौजूद थे सर्वश्री मधुप मोहता, प्रो. अमीन मुग़ल, प्रो. जगदीश दवे, बलवन्त जानी (भारत), के.सी. मोहन (प्रलेस - पंजाबी), डॉ. इतेश सचदेव (सोआस विश्वविद्यालय), कैलाश बुधवार, डॉ. नज़रूल इस्लाम, अचला शर्मा, वेद मोहला, ग़ज़ल गायक सुरेन्द्र कुमार एवं इन्द्र स्याल, इलाहबाद हाई कोर्ट के जस्टिस सुधीर नारायण सक्सेना, अनुज अग्रवाल (सूर्यास्त्र प्रकाशन), डॉ. हबीब ज़ुबैरी, महेन्द्र दवेसर, जय वर्मा, डॉ. महीपाल वर्मा, विभाकर बख़्शी एवं रमेश पटेल।

समाचार नार्वे से

सुरेशचद्र शुक्ल 'शरद आलोक' अभिनन्दन ग्रन्थ का लोकार्पण

4 अप्रैल 2009 को हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय में सुरेशचद्र शुक्ल 'शरद आलोक' अभिनन्दन ग्रन्थ का लोकार्पण संगीता सीमोनसेन, प्रो .प्रेमशंकर तिवारी और और डॉ. विद्याविन्दु सिंह ने संयुक्त रुप से किया। प्रो .के.डी सिंह एवं अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादकत्रय में अग्रणी डॉ .रामाश्रय सविता ने सुरेशचद्र शुक्ल 'शरद आलोक' अभिनन्दन ग्रन्थ पर अपना वक्तव्य दिया। पूर्व उपनिदेशक हिन्दी संस्थान डॉ. विद्याविन्दु सिंह, संयुक्त निदेशक आकाशवाणी निदेशालय कृष्ण नारायण पाण्डेय, विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग प्रो . प्रेमशंकर तिवारी, डॉ .पाल, प्रो .योगेन्द्र प्रताप सिंह, डॉ .कृष्णा श्रीवास्तव, आनन्द शर्मा, भैयाजी, मधुकर अस्थाना, शिवभजन कमलेश, सरिता शुक्ला ने अपने विचार व्यक्त किये और संस्मरण सुनाये।

लोकार्पण समारोह की मुख्य अतिथि थी नार्वे से पधारी संगीता सीमोनसेन और अध्यक्षता की थी प्रो .प्रेमशंकर तिवारी ने। इस कार्पक्रम में सुरेशचद्र शुक्ल 'शरद आलोक' और नार्वे से आये उनके ज्येष्ठ पुत्र अनुराग भी उपस्थित थे।

'रजनी', 'गुड़िया का घर' और 'मुर्गाबी' का लोकार्पण

लखनऊ विश्वविद्यालय के डी. पी. सभागार में दि .22 अपैल 2009 को सुरेशचद्र शुक्ल 'शरद आलोक' द्वारा अनुदित विश्व प्रसिद्ध नार्वेजीय नाटककार हेनरिक इबसेन की कृतियों 'गुड़िया का घर' और 'मुर्गाबी' तथा 1984 में रचित काव्यसंग्रह 'रजनी' का लोकार्पण उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के निदेशक डॉ. .सुधाकर अदीब ने किया।

काव्यसंग्रह 'रजनी' पर अपने विचार प्रगट किये डॉ. प्रेमशंकर तिवारी, आनन्द शर्मा, डॉ.सुधाकर अदीब और प्रो. हरिशंकर मिश्र ने तथा 'गुड़िया का घर' और 'मुर्गाबी' पर अपने विचार प्रगट किये प्रो .राकेश चद्रा, प्रो .योगेद्र प्रताप सिंह और सुरेशचद्र शुक्ल 'शरद आलोक' ने। शरद

आलोक ने हेनरिक इबसेन को विश्व के नाटककारों का पितामह बताते हुए कहा कि अभी तक हेनरिक इबसेन का नाम हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में गलत लिखा जाता रहा है। उन्होंने ए क अन्य उदाहरण देते हुए कहा कि नार्वे के नोबेल पुरस्कार प्राप्त लेखक क्नुत हामसुन को काफी समय तक गलत नट हामसुन लिखा जाता रहा।

कार्यक्रम का शुभारम्भ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण से हुआ जिसमें सरस्वती वन्दना प्रस्तुत की शिवभजन कमलेश ने। कार्यक्रम का संचालन करते हुए नाटकों के अंश को नाटकीय अन्दाज मे प्रस्तुत किया डॉ . कृष्णा जी श्रीवास्तव ने।

'गुड़िया का घर' के हिन्दी अनुवाद के अंशों को 2006 में ओस्-लो मे सम्पन्न हुए अन्तराष्ट्रीय सांस्कृतिक महोत्सव में सुरेशचद्र शुक्ल 'शरद आलोक' ने प्रस्तुत किया था , जिसमें डॉ .सत्येन्द्र श्रीवास्तव (लन्दन) मुख्य अतिथि थे।

चित्र में:

चित्रा में बायें से योगेद्र प्रताप सिंह, रामश्रय सविता, सुरेशचद्र शुक्ल 'शरद आलोक', भैया जी, प्रो .प्रेमशंकर तिवारी, संगीता सीमोनसेन, डॉ .विद्याविन्दु सिंह, प्रो .के डी .सिंह, आनन्द शर्मा और डॉ.कृष्ण नारायण पाण्डेय

शिक्षायतन द्वारा

डॉ. अंजना संधीर को साहित्य मणि, अलंकरण

दिनांक 7, जून 2009 को पूर्णमासी के दिन श्रीमती पूर्णिमा देसाई के शिक्षायतन, फ्लेशिंग, न्यूयार्क के प्रांगण में डॉ. अंजना संधीर के सम्मान में एक काव्य गोष्ठी का आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

शिक्षायतन एक ऐसी संस्था है जहाँ विद्यार्थियों को हिंदी और संस्कृत भाषा के शिक्षण के साथ साथ नृत्य, संगीत और भारतीय संस्कृति का भी ज्ञान दिया जाता है. इस संस्था की संस्थापिका एवं निर्देशिका श्रीमती पूर्णिमा देसाई जी ने डॉ. अंजना संधीर का स्वागत करते हुए कहा, "मैं एक ऐसी विभूति को बुला रही हूँ , जिन्होंने साहित्य के प्रचार में, संस्कृति के प्रचार में अपना योगदान दिया है और वह है डॉ. अंजना संधीर." डॉ. संधीर ने मंच का गौरव बढ़ाते हुए दीप प्रज्वलित किया। शिक्षायतन संस्था के संगीत विभाग से जुड़े सुर-सागर के माहिर पंडित कमल मिश्रा जी ने माता के चरणों में गुलाब के फूलों को अर्पित करते हुए सरस्वती वंदना की।

अंजना जी ने सभी कवियों और अन्य मित्रों को उपस्थित होने के लिए धन्यवाद दिया। उन्होंने यू. के. से आए श्री कृष्ण कुमार जी को सादर आमंत्रित किया, जिन्होंने अपने विचार प्रस्तुत करने से पहले पूर्णिमा जी को बधाई की पात्र मानते हुए अंजना जी के लिये कहा कि यह नारी जाति के लिए गर्व की बात रही जो अंजना जी "प्रवासिनी के बोल" और "प्रवासी आवाज़" के संपादन से विश्व-मंच पर अपने आपको स्थापित कर पाईं है। अंजना जी का कहना और मानना है कि अमेरिका के हर शहर में उनका एक घर है और सीमाओं से परे उनके रिश्ते हैं , जिनको कोई सरहद नहीं बाँध पाएगी। अंजना जी के भावों को कविता में इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

"मत करो तुम विरोध अंग्रेजी का,
पर करो तुम अधिक प्रयोग हिंदी का
मैंने जो बनाई माला उसके हर फूल को
प्रेम और सदभावना से तुम सींचते चलो
न आये कभी प्रतिस्पर्धा तुममें हर फूल को
निखरने के अवसर प्रदान करते चलो।
भारतवासी हो तुम नित नये अहिन्दी के हृदय में
हिंदी के प्रति अनुराग जगाते चलो."

भावों के आदान-प्रदान के पश्चात काव्य गोष्ठी का आरंभ हुआ, जिसका स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठी से कम न था। रचना-पाठ की शुरूआत से पहले डॉ. दाऊजी गुप्त द्वारा पूर्णिमा देसाई ने अंजना जी को "साहित्य मणि" से पुरस्कृत करवाया. अंजना जी ने सब आमंत्रित अतिथियों का परिचय देते हुए हृदय से अभिवादन किया। डॉ. दाऊजी गुप्त ने जो अखिल विश्व हिन्दी परिषद् के अंतर्राष्ट्रीय अध्यक्ष है, और जो लखनऊ से पधारे थे , कविता पाठ का शुभारम्भ अपनी कविता पढ़ कर किया।

यू. के. से आये डॉ. कृष्ण कुमार ने अपनी रचना पाठ के बाद अपने साथी साहित्यकारों और कविगणों को आमंत्रित किया । जिनमें वहाँ मौजूद थे , श्री कृष्ण कन्हैया, श्री नरेन्द्र ग्रोवर , जय वर्मा, और श्रीमती स्वर्ण तलवाड़। उसके पश्चात अनूप और रजनी भार्गव ने अपनी नन्हीं नन्हीं कविताओं से ज़िन्दगी के नए रंग, माहौल में भर दिए। टोरंटो से श्री गोपाल बगेल जी ने सुरमई धुन में अपनी रचना सुनाई। फिर मंच को थामा न्यूयार्क तथा न्यू जर्सी के कवियों ने जिनमें शामिल रहे श्री अशोक व्यास, श्री ललित अहलुवालिया, मंजू राय, डॉ. बिन्देश्वरी अग्रवाल, डॉ. अंजना संधीर, पूर्णिमा देसाई, गौतम जी, पुष्पा मल्होत्रा, नीना वाही, अनुराधा चंदर, डॉ. अनिल प्रभा, गिरीश वैद्य, देवी नागरानी, लखनऊ से आई श्रीमती शशि तिवारी और उनकी सुपुत्री शिवरंजनी। श्रोताओं में रहे श्री कथूरिया जी, परवीन शाहीन, रेनू नंदा, रीटा कोहली, डॉ. रानी सरिता मेहता और अनेक साहित्य-प्रेमी। डॉ. सरिता मेहता विध्याधाम संस्था की निर्देशिका है और साथ में एक अच्छी कवयित्री भी है. इस काव्य सुधा की शाम के आयोजन में उनका सहयोग रहा।

समाचार

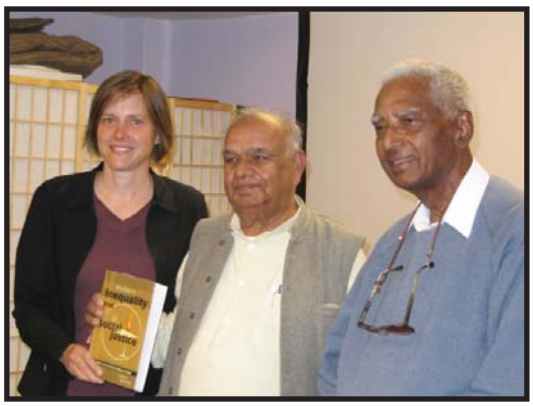

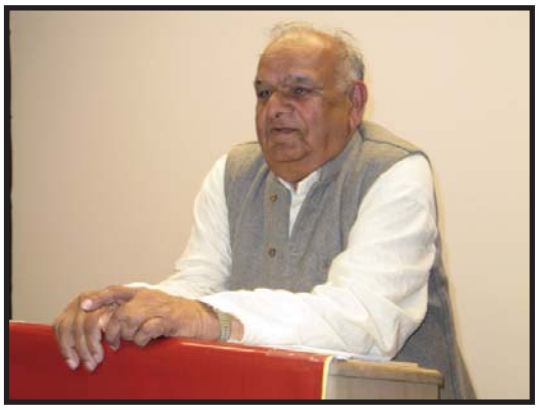

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय बर्कले के दक्षिण एशियाई अध्ययन केन्द्र की ओर से 20 मई 2009 को एक विशेष आयोजन ' वेद प्रकाश वटुक के जीवन और उनकी काव्य कृतियों' के सम्मान में किया गया। इस अवसर पर अंर्तराष्ट्रीय बौद्ध दर्शन के मर्मज्ञ प्रो. पद्मनाम जैनी ने डॉ. 'वटुक' के सम्मान में प्रो. किरा हॉल द्वारा सम्पादित ग्रन्थ ' स्टडीज़ इनइकौलीटीज़ एन्ड सोशल जस्टिस' एसेज़ इन आनर आफ वटुक का विमोचन किया। अध्ययन केन्द्र की अध्यक्ष डॉ . किरा हॉल ने 'वटुक' के अन्याय के विरोध में किये गये जीवन भर के संघर्षों की गम्भीर और विशद विवेचना की और कहा कि उनका काव्य संसार उनके संघर्षों का ही प्रतिबिंम्ब है, जो हर प्रकार के दमन - शोषण के प्रतिकार के लिए आवाहन करता है।
साम्राज्यवाद , नस्लवाद, लिंगवाद, पूँजीवाद , सामन्तवाद आदि के विरोध में उनका प्रचुर साहित्य उनके देश- विदेश में किये कार्यों को ही परिभाषित करता है । आयोजन में ग्रन्थ के 21 विद्वान लेखकों में से आठ उपस्थित थे । जो कई राज्यों से चलकर आये थे। शेष ने भारत , यूरोप और अमेरिका के अन्य राज्यों से शुभकामनाएँ भेजीं। अपने परिवार के आर्यसमाजी तथा स्वतंत्रता संग्राम में किये योगदान की चर्चा के साथ 'वटुक' ने अपनी कविताओं के माध्यम से 'मानवीय अधिकारों' की प्रेरणा दी।

काव्य मंचों को गहरा आघात

गजेन्द्र सोलंकी (भारत)

संसार में जीवन की नश्वरता सर्वविदित है किन्तु जब अचानक इतना बड़ा आघात लगे और हमारे संगी-साथी इस तरह छोड़ जाएँ तो मन का विचलित होना स्वाभाविक है ! हिंदी काव्य मंचों के कवियों का एक परिवार है जिसमें बहुत गिने चुने मुख्य धारा के नाम हैं ! जून 2009 को हिंदी कवि सम्मेलनों के इतिहास में "खून से सना जून" कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी ! एक वज्रपात हिंदी कविता पर हुआ है ! 8 जून 2009 की पूर्णिमा की रात्रि के अंतिम प्रहर में बेतवा महोत्सव,विदिशा (मध्य प्रदेश) के कवि सम्मलेन से भोपाल लौटते हुए सुबह लगभग 4 बजे भीषण सड़क दुर्घटना में श्री ओमप्रकाश आदित्य , श्री नीरज पुरी, श्री लाड़सिंह तो उसी स्थान पर दिवंगत हो गए जबकि गंभीर रूप से घायल अवस्था में श्री ओमव्यास और थोड़ा कम घायल जानी बैरागी को भोपाल लाया गया ! ओम व्यास जी को भोपाल से दिल्ली के अपोलो हॉस्पिटल में दाखिल किया गया ! वे एक महीने तक जीवन-मृत्यु के बीच झूलते रहे, अंततः पूरे एक माह बाद गुरु पूर्णिमा की रात्रि में 8 जुलाई को 2:45 बजे अंतिम सांस ली और जिंदगी की लड़ाई हार गए ! कवि सम्मेलनों के इतने दिग्गजों के इस तरह हादसे का शिकार होने से न केवल कवि समाज बल्कि असंख्य श्रोता, प्रशंसकों का वर्ग भी शोकाकुल है !

जिसने भी सुना , आहत हुआ ! इस दुर्घटना से आहत श्री अल्हड़ बीकानेरी जी, आदित्य जी की अंत्येष्टि से लौटे और कहते हैं भावुक होकर आ लौट के 'आ जा मेरे मीत' गीत गाते -गाते

ऐसे बीमार हुए फिर नहीं उठे ! हिंदी मंचीय कविता को लगे इस आघात से काव्य और साहित्य जगत में शोक की लहर दौड़ रही है ! श्री ओमप्रकाश आदित्य, श्री अल्हड़ बीकानेरी, श्री नीरज पुरी , श्री लाड़सिंह की दुखद मृत्यु के सदमे से काव्य जगत उभर भी ना पाया था कि कवि ओम व्यास ओम के एक माह के मृत्यु से संघर्ष के पश्चात् दुखद निधन से फिर से शोक की लहर दौड़ गयी ! सबके होंठों पर मुस्कान बिखेरने वाले मंचों के महारथी , कभी न ख़त्म होने वाले दर्द का एहसास और खालीपन छोड़ अनंत की यात्रा पर चले गए ! सभी कवियों के साथ काव्य यात्राओं और संस्मरणों की एक लम्बी श्रंखला है , सभी से स्नेह , आशीर्वाद मिला किन्तु प्रिय मित्र ओम व्यास का जाना मेरे लिए एक व्यक्तिगत और असहनीय क्षति है ! जब भी मैं परेशान या चिंतित होता था , अच्छे मित्र की तरह मार्गदर्शन करना और हिम्मत बंधाना मेरे प्रति उनका प्रेम दर्शाता था !

हमारा भारत श्रुति का, वाचिक परम्पराओं का देश है और इ स परंपरा में मंच एक बहुत बड़ा साधन, बड़ा माध्यम रहा है ! आज जब अनेक टी. वी . चैनल , सिनेमा , रेडियो आदि माध्यम काव्य मंचों के लिए प्रतियोगी के रूप में प्रभावी हैं , इन कवियों ने कविता को और मंचों को सदा नई उर्जा और शक्ति दी ! आदित्य जी , अल्हड़ जी को काव्य छंद शास्त्र के ज्ञाता महान कवि के रूप में हम सभी जानते हैं ! मंचों पर हास्य व्यंग्य को छंद बद्ध कर गाकर प्रस्तुत करने की अद्भुत शैली के दोनों ही महान कवि थे ! जब कभी भी मैं छंद या कविता के विषय में बात करता या पूछता , दोनों ही बड़े मन से प्रेम पूर्वक समझाते थे !

मित्र ओमव्यास जी उपनगर उज्जैन (मध्य प्रदेश) और नीरज पुरी जी बैतूल (मध्य प्रदेश) से निकले ! पूरे भारत और भारत के बाहर हास्य-व्यंग्य के शीर्ष कवियों में विशेष पहचान बनाने वाले दोनों ही मित्र कवि मंच की सफलता के प्रतीक रहे ! श्री लाड सिंह जी मालवा के साथ-साथ पूरे मध्य भारत के कवि सम्मेलनों में एक राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत ओजस्वी रचनाकार के रूप में जाने जाते थे ! कविकुल के इन दीपकों का असमय बुझ जाना न केवल परिजनों , बल्कि पूरे कवि और हिंदी साहित्य समाज के लिए अत्यंत कष्टदायी है ! सभी अमर रचनाकारों को श्रद्धा के शब्द सुमन अर्पित करते हुए उनकी आत्मा की शांति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ! सभी के परिवारों को ईश्वर शक्ति प्रदान करे !

अत्यंत व्यथित और शोकाकुल मन से कुछ शब्दांजलि अर्पण करने का प्रयास किया है । मंच की उन विभूतियों को श्रद्धा सुमन अर्पित हैं , श्रद्धांजलि नाम के अनुरूप गुण वाले आदित्य जी की स्मृतियों को समर्पित -

व्यंग्य की वो धार गयी हास्य की फुहार गयी
दिव्य काव्य चेतना का सागर चला गया ,
कविता के छंद का सितार हुआ तार-तार
हिंदी कविता का नट नागर चला गया ,
गगन के आदित्य के उगने से पूर्व क्यों वो
पूर्णिमा की रात्रि में दिवाकर चला गया
अमावस के तिमिर में प्रकाश देने वाला
मंच के जगत का प्रभाकर चला गया ।

दूर-दूर बैठे घूर-घूर जिन्हें देखते थे
श्रोताओं की अँखियों के नूर चले गए हैं
मंचलोक की थे शान देवलोक वासी हुए
जीवन को जी के भरपूर चले गए हैं
ज्यों आदित्य का प्रकाश आदित्य में लीन हुआ
सभी के दिलों के वे हुजूर चले गए हैं
ताली ना बजाओगे तो गाली ना सुनायेंगे वो
कविवर आदित्य जी दूर चले गए हैं

अल्हड़ जी की स्मृतियों को समर्पित -
बंधन अटूट एक - एक कर टूट रहे
कालपा कैसा ये चलाया मेरे राम जी
पञ्चतत्त्व वाली देह नश्वर है किन्तु प्रभो!
असमय ये संकट क्यों ये आया मेरे राम जी
शोक की सभाएँ देख कविकुल व्याकुल है
समझ न आयी तेरी माया मेरे राम जी
अल्हड़ कहानी गई, काव्य की रवानी गई
रह गयी कविता की छाया मेरे राम जी

नीरज पुरी जी, ओमव्यास जी, लाड़ सिंह जी
की स्मृतियों को समर्पित -

निज पर व्यंग्य कस-कस के हँसाने वाले
नीरज पुरी जी तोड़ प्रीत चले गए हैं
वाक शक्ति बिखरी ज्यों मंत्र का संधान बनी
जीवन की छोड़ हार-जीत चले गए हैं
राष्ट्र चेतना के ज्वार लाडले वो लाड़ सिंह
ओजभरी वाणी वाले गीत चले गए हैं
ओम की परम ज्योति ओम में ही लीन हुई
प्रिय ओमव्यास मेरे मीत चले गए हैं

छंद कविता सुना के हँसने-हँसाने वाले
प्रियजनों के नयनों में नीर छोड़ गए हैं
ख़ुशी की सौगात सारे जग को लुटाने वाले
हम सबके मनों में पीर छोड़ गए हैं
काव्य मंचों पर पीढ़ियों को राह दिखलाये
कविता की पावन लकीर छोड़ गए हैं
लगता है देव - दरबार में है काव्य यज्ञ
जो वे सुकवि हमें अधीर छोड़ गए हैं

हमारे शास्त्रों में लिखा है शब्द ब्रह्म है और उसकी शक्ति असीम है हमारे मनोभाव ,विचार शब्दों के माध्यम से दृश्य जगत से सूक्ष्म जगत की यात्रा करते हैं और शायद कर्म और कर्मफल के रूप में प्रतिध्वनित होते हैं ! कवियों को वाणी का आशीर्वाद प्राप्त होने से कुछ शब्द मंत्र रूप बन जाते हैं ! जहाँ तक हमारी बुद्धि का साम्राज्य है हमें सूक्ष्म जगत और ईश्वरीय सत्ता आभास नहीं हो पाता है , किन्तु वर्तमान में कुछ ऐसा घटित हो रहा है जो बौद्धिक समझ से परे है , ऐसे में शब्द की अधिष्ठात्री माँ वीणावाणी से प्रार्थना के कुछ भाव -

कविता की साधना में , शब्द की आराधना में
भाषा संस्कार , अलंकार रस-रास हो
वाणी की उपासना में , सृजन की भावना में
दिव्य शक्तियों का नहीं कभी उपहास हो
कवि शब्द की विराट सत्ता के हैं प्रतिनिधि
शब्दों में अनिष्ट का न भाव ना प्रयास हो
मंच लोकमंगल की कामना के हों प्रतीक
नित मातु शारदे से यही अरदास हो
इन्हीं कामनाओं के साथ पुन: कवियों की स्मृतियों को श्रद्धापूर्वक नमन :

स्वर्गीय कुँवर रामेश्वर सिंह (जेवाँ) शाहजहाँपुर

श्रद्धाँजलिः–

स्वर्गीय कुँवर रामेश्वर सिंह १४ जुलाई २००९ को इस संसार से चले गये । मुझे यह शोक समाचार उनके प्रिय भतीजे कुँवर नीरज सिंह ने दिया । यह समाचार सुनकर मुझे जेवाँ गाँव की मिट्टी से जुड़ी धूमिल यादें फिर से ताज़ा हो गईं । क्योंकि मैं भी इसी गाँव की उपज हूँ और इस हरे भरे राजपूत परिवार से भली-भाँति परिचित हूँ कुँवर सूरज सिंह जो मेरा बचपन के मित्र और सहपाठी रहे हैं । विदेशों में रहने के कारण बहुत कुछ इतने वर्षों में भूल चुका हूँ – लेकिन अपनी जन्म भूमि पूरी तरह से मेरे मानस पटल पर अंकित है । कुँवर रामेश्वर सिंह के निधन से मुझे व्यक्तिगत दुःख हुआ । मेरी सहानुभूति और संवेदना इस दुःखित परिवार के साथ है । ईश्वर उनकी दिवंगत आत्मा को परमं शान्ति प्रदान करे और उनके परिवार को यह भीष्म दुःख सहन करने की शक्ति प्रदान करे ।

श्याम त्रिपाठी

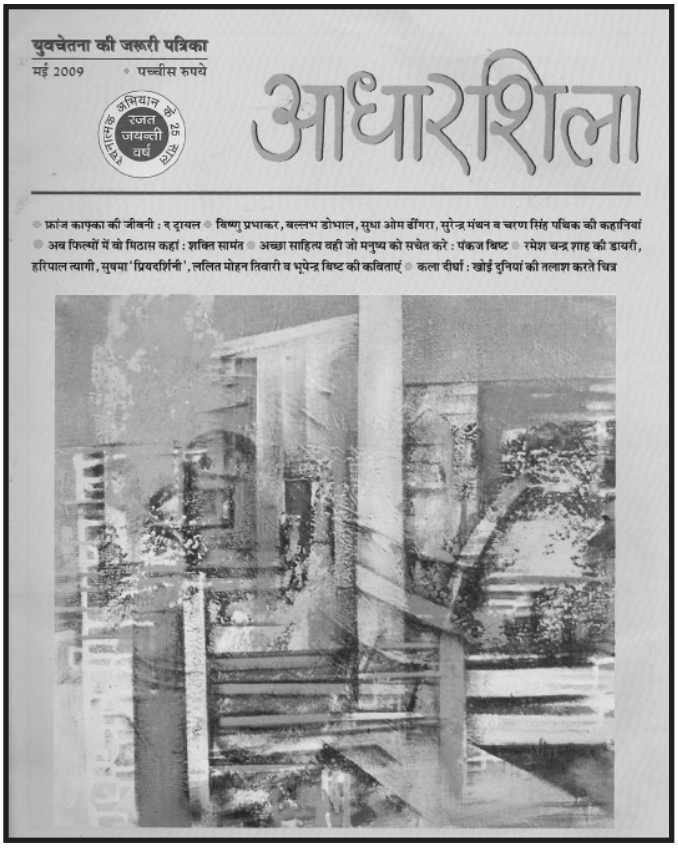

सम्बन्ध अभी जीवित हैं – श्रद्धांजलि

अभिनव शुक्ल (अमेरिका)

भारतीय साहित्य जगत को पिछले कुछ महीनों में जो आघात पहुँचे हैं वे बड़े गहरे हैं। साहित्य ऋषि विष्णु प्रभाकर के देहावसान के एक सप्ताह के भीतर संस्कृत के परम वि द्वान आचार्य रामनाथ सुमन के जाने का समाचार आया। अभी साहित्य संसार प्रात: स्मरणीय सायं वन्दनीय आचार्य रामनाथ सुमन जी के परमधाम गमन के शोक से उबरा ही नहीं था कि वीर रस के प्रख्यात कवि छैल बिहारी वाजपेयी 'बाण' के जाने की सूचना प्राप्त हुई। जब तक काव्य मंचों पर प्रहार ये काली छाया टलती, भोपाल के पास एक कार दुर्घटना हुई जिसमें हास्य सम्राट ओमप्रकाश आदित्य, लाड़ सिंह गुर्जर और नीरज पुरी भी माता सरस्वती की गोद में चले गए। फिर अल्हड़ बीकानेरी जी के देहवसान की सूचना प्राप्त हुई और अभी कुछ देर पहले फ़ोन पर बजने वाली दुर्दांत रिंगटोन नें ओम व्यास ओम के जाने का समाचार सुनाया है। ओम व्यास एक महीने तक मृत्यु से साथ संघर्ष करते रहे और अंतत: हम सबको छोड़ कर चले गए। जीवन की नश्वरता और क्षणभंगुरता का भान किसे नहीं होता। पर यह भान सदा कहीं छिपा सा रहता है। हमको ऐसा लगता है कि जो हमारे परिचित हैं, हमारे प्रिय हैं , उनका कुछ बुरा नहीं हो सकता और जब एक के बाद एक इस प्रकार की सूचनाएं आती हैं तो हृदय आघात सहने का अभ्यस्त सा होने का प्रयास करने लगता है। इन महानुभावों के गमन ने हिंदी साहित्य जगत में ए क ऐसी रिक्तता भर दी है जिसकी पूर्ति कभी नहीं हो सकेगी।

'आवारा मसीहा' और 'अर्धनारीश्वर' जैसे अद्भुत उपन्यासों के रचयिता विष्णु प्रभाकर नें कभी अपने लेखकीय स्वाभिमान के साथ समझौता नहीं किया। 'पद्मभूषण' की उपाधि ठुकराने वाले इस लेखक की ख्याति सरकारी सम्मानों से नहीं अपितु उसकी लेखनी की धार से तथा पाठकों के स्नेह के बल पर सारे संसार में अपनी सुगंध बिखेर रही है। गांधीजी के आदर्शों पर जीवन पर्यन्त चलने वाले विष्णु प्रभाकर देशभक्ति और मानवीय संवेदनाओं के सच्चे सिपाही थे। किसी ने ठीक ही कहा है कि, विष्णु प्रभाकर के जाने से साहित्य 'पंखहीन' हो गया है।

आचार्य रामनाथ सुमन पिछले कुछ समय से बीमार चल रहे थे। जब पिछले वर्ष मुझे उनके दर्शन का लाभ प्राप्त हुआ तो ऐसा लगा मानो वे भारतीयता का एक महासागर हैं जिसकी लहर लहर अपने भीतर से मोती लाकर तट पर छोड़ती जा रही है। कुछ माह पूर्व ही उनके सुपुत्र और सुकवि डॉ. वागीश दिनकर से आचार्य जी की नयी कविता सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस कविता की कुछ पंक्तियां अभी भी मानस के पटल पर उभरती रहती हैं।

नश्वर है यह देह अनश्वर अपने आत्माराम हैं,
जिनकी इच्छा बिना न जग में पूरे होते काम हैं,
हमको प्रभु नें भेजा देखो हमनें जीवन खूब जिया,
अच्छा पहना अच्छा गहना अच्छा खाया और पिया,
हम जग में रोते आये थे हंसते अपनी कटी उमर,
हमने राह गही जो अपनी वह औरों को बनी डगर,
हम उपवन के वही सुमन जो खिलते आठों याम हैं,

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी के पूर्व अध्यक्ष आचार्य सुमन नें अनेक ग्रंथों की रचना की है। बाणभट्ट द्वारा रचित संस्कृत ग्रन्थ कादम्बरी पर की गयी उनकी टीकाएं अद्भुत हैं। यह टीकाएं अब अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का हिस्सा है। आचार्य जी का हिंदी और संस्कृत दोनों पर सामान रूप से अधिकार था और जब वे बोलते थे तो ऐसा लगता था मानो वे बोलते ही रहे और सब मंत्रमुग्ध होकर उनको सुनते ही रहे। पूज्य आचार्य जी को सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी की हम अपने जीवन में भारतीय दर्शन को उतारने का प्रयास करें।

पंडित छैल बिहारी वाजपेयी 'बाण' उत्तर भारत के लोकप्रिय वीर रस के कवियों में से एक थे. जब वे मंच पर गरज -गरज कर अपनी रचनायें सुनाते थे तो अद्भुत समां बाँध देते थे, अमेरिका में होने वाले एक कवि सम्मलेन में बाण जी के सुपुत्र और वीर रस के राष्ट्रीय कवि वेदव्रत वाजपेयी को आमंत्रित किया गया था। कवि सम्मलेन वाले दिन मैंने जब न्यू जर्सी बात करी तो डॉ. सुनील जोगी नें ये दुखद सूचना दी कि किस कारण से वेदव्रत जी नहीं आ पाए हैं। बाण जी के निधन से अवधी कविता को मंच पर पूरी गरिमा से प्रस्तुत करने वाला एक सैलानी कम हो गया है। प्रखर राष्ट्रीयता की भावना को हिम्मत के साथ बोलने तथा श्रोताओं में अग्नि धर्मा रचनाओं को पढ़ने वाला एक शिखर पुरुष हमारे बीच से चला गया है। उनकी कुछ पंक्तियां अभी भी मेरी स्मृतियों में हैं।

देखते ही देखते गंवाया गया बंग और वक्त हाथ आया तो मिलाया भी गया नहीं,
सवा लाख शत्रुओं के शास्त्र डालने के बाद बंकिम धरा को अप–नाया भी गया नहीं,
दाहिड़ नरेश की वसुंधरा कराची पर झंडा ये तिरंगा लहराया भी गया नहीं,
रोज़ राष्ट्र गान में पढ़ाया गया सिंध किन्तु हिंद मानचित्र में दिखाया भी गया नहीं।

आदित्य दा से हुयी पहली मुलाकात मानो मेरी आँखों के आगे एक बार पुन: घूम गयी. सन् 99 के दिसम्बर के आस पास की बात है। रुड़की विश्वविद्यालय अपना वार्षिकोत्सव थोम्सो मना रहा था। मैं भी बरेली से अपने कालेज की टीम लेकर वहाँ पहुँचा था। अनेक प्रतियोगिताएँ होनी थीं तथा रुड़की के छात्रों नें सब व्यवस्था बहुत भली प्रकार से संभाल रखी थी। उस समय रुड़की के कार्यक्रमों में नियमित कवि सम्मलेन होते थे। मधुरजी कवियों को बुलाने और उनके रुकने आदि कि व्यवस्था करते थे। जब

उनको पता चला कि रूहेलखंड विवि के छात्रों में से एक कविता लिखता है तो उन्होंने मुझे भी मंच पर बुला कर बैठा दिया। आदित्यजी कायर्क्रम की अध्यक्षता कर रहे थे। तब तक मुझपर हास्य रस का बुखार पूरी तरह नहीं चढ़ा था और मैं मंच पर वीर रस की रचनायें ही पढ़ा करता था। जब आदित्य जी काव्य पाठ करने आये तो उन्होंने सभी कवियों के काव्य पाठ पर कुछ शब्द कहे और मुझे भी आर्शीवाद देते हुए कहा कि ये लड़का लिखता अच्छा है पर अपनी ऊर्जा व्यर्थ में बर्बाद कर रहा है। इसके बाद उन्होंने वीर रस के कवियों को समर्पित करते हुए हास्य रस की एक रचना पढ़कर इसके बाद एक -एक करके उन्होंने अपने पिटारे से अनेक मनभावन कविताएँ श्रोताओं को सुनायीं। शब्दों को एक विशेष रूप से उच्चारित करने का उनका अंदाज़ निराला था. 'गोरी बैठ छत पर', 'संपादक के नाम पत्र', 'लापता गधा' और 'दूर दूर बैठे मुझे घूर घूर देखते हो' आदि रचनायें आज के हास्य रस के कवियों के लिए एक मापदंड के रूप में स्थापित हैं।

कार्यक्रम की समाप्ति पर उनका ऑटोग्राफ लेने के लिए छात्रों की लाइन लग गयी। उन्होंने मुस्कुराते हुए सबको आटोग्राफ दिया और फिर सभी कवि आगे बढ़े। रास्ते में मैंने उनसे पूछा कि, 'अच्छा लिखने के लिए क्या करना चाहिए?' वे बोले की खूब पढ़ना चाहिए। मैंने पूछा कि क्या पढ़ना चाहिए तो इस पर वे हँसे और बोले की पढ़ना शुरू करो तो तुमको स्वयं पता चल जाएगा की तुम क्या पढ़ने के योग्य हो। हिंदी के कवि होने के नाते तुम ये अवश्य जानना चाहोगे कि भारतीय साहित्य में जो कुछ भी श्रेष्ठ लिखा गया है वो श्रेष्ठ क्यों है। इस घटना के बाद भी दो तीन बार मुझे उनके दर्शन और सान्निध्य का लाभ प्राप्त हुआ। अंतिम बार उनके दर्शन पिछले वर्ष दिल्ली के फिक्की सभागृह में आयोजित एक कायर्क्रम में हुए। इस कायर्क्रम में उन्होंने उन कवियों की कविताएं सुनायीं थीं जो कि इस दुनिया को अलविदा कह चुके थे। किसे पता था की आदित्यजी इस प्रकार इस संसार को छोड़कर जाने वाले हैं। पिछले कुछ समय से आदित्य जी को मैंने मंचों पर ये छंद पढ़ते सुना था।

दाल रोटी दी तो दाल रोटी खाके सो गया मैं,
आँसू तूने दिये आँसू पीये जा रहा हूँ मैं,
दुख तूने दिये मैंने कभी न शिकायत की,
सुख दिये तूने सुख लिए जा रहा हूँ मैं,
पतित हूँ मैं तो तू भी पतित पावन है,
जो तू कराता है वही किए जा रहा हूँ मैं,
मृत्यु का बुलावा जब भेजेगा तो आ जाऊँगा,
तूने कहा जिये जा तो जिये जा रहा हूँ मैं।

अल्हड़ जी की कविताएं अपने भीतर एक पूरी कहानी समेटे रहती थीं। जब वे अपनी "होठों से छुआ के मूंगफली महबूब को मारा करते हैं" कव्वाली पूरी मस्ती के साथ गाते थे तो मानो पूरा वातावरण तालियों में डूब जाता था। वे मंच पर पूरे अल्हड़पन के साथ अपनी रचनायें पढ़ते थे और बड़ी सरलता से अपनी बात श्रोता तक पहुंचाने के हुनर में माहिर थे। अल्हड़ जी की निम्न पंक्तियां सदा उनके तेवर हमको याद दिलाती रहेंगी।

खुद पे हँसने की कोई राह निकालूँ तो हँसूं,
अभी हँसता हूँ ज़रा मूड में आ लूं तो हँसूं,
जिनकी साँसों में कभी गंध न फूलों की बसी,
शोख कलियों पें जिन्होंने सदा फब्ती ही कसी,
जिनकी पलकों के चमन में कोई तितली न फंसी,
जिनके होठों पे कभी भूले से आई न हँसी,
ऐसे मनहूसों को जी भर के हंसा लूं तो हँसूं,
अभी हँसता हूँ ज़रा मूड में आ लूं तो हँसूं।

लाड़ सिंह गुर्जर मध्य प्रदेश के एक बहुत छोटे से गाँव से उठकर राष्ट्रीय स्तर के मंचों पर पहचान बनाने वाले कवि थे। मंच पर वे अनेक रसों की कवितॉं पढ़ते थे पर उनका मुख्य स्वर वीर रस का रहता था। एक सुरीले कंठ के धनी लाड़ सिंह गुर्जर जब अपने लोकगीत सुनाते थे तो सबको आनंद विभोर कर देते थे। उनका इस प्रकार असमय जाना नियति की कुटिलता का सूचक है।

नीरज पुरी मेरे प्रिय कवियों से एक थे। उनकी रचनाओं में छिपा व्यंग्य बड़ा तीखा होता था। नीरज पुरी एक श्रेष्ठ हास्य कवि तो थे ही, पर कविता से इतर भी उनका स्वभाव बड़ा हंसमुख था। बात - बात में लोगों को ठहाके लगाने के लिए मजबूर कर देना उनके दैनिक जीवन का हिस्सा था। हाथ में लिए हुए काम को पूरी कर्मठता के साथ निभाना उनकी एक बड़ी खूबी थी। एक बार वे कवि सम्मलेन से लौट कर आये तो पता चला की बैंक में कोई आवश्यक काम आ गया है. फिर क्या था अपने सहकर्मियों के साथ वे भी लगातार अड़तालीस घंटे बैंक में काम करते रहे। जिस बैंक की नौकरी के लिए उन्होंने त्याग किये थे एक बार ऐसा समय भी आया जब उनको वहाँ से निकाले जाने की नौबत आ गयी। पर नीरज जी नें कभी हिम्मत नहीं हारी और वो कठिन समय भी बीत गया तथा बैंक नें उन्हें ससम्मान दुबारा नियुक्त कर लिया। बाद में अनेक अवसरों पर उसी बैंक में नीरज जी के सम्मान में कार्यक्रम भी आयोजित हुए। नीरज जी की कविताएँ उनके कालेज के समय से ही लोगों में अपना स्थान बनाने लगी थीं। मुझे आज भी याद है की जब 2005 में उनको काका हाथरसी सम्मान से सम्मानित किया गया तो वे कितने प्रसन्न थे। मैंने जब उनको शुभकामनाएँ दीं, तो उन्होंने धन्यवाद दिया और फिर बड़ी विनम्रता से बोले, कि अरे भाई, 'पप्पू पास हो गया'। उस दिन मैंने उनकी आँखों में आगे और भी बहुत कुछ करने का और अपनी संप्रेषण धर्मी रचनाओं में संसार को समेटने का भाव देखा था।

ओम व्यास की कविताएं तथा उनका अनूठा अंदाज़ सबको बहुत पसंद आता था। व्यवहार में सरलता ओम व्यास का एक अनूठा गुण था। उनकी कुछ पंक्तियां उनके आचरण कि पुनरुक्ति सी करती प्रतीत होती हैं।

विश्व में किसी भी देवता का स्थान दूजा है,
माँ-बाप की सेवा ही सबसे बड़ी पूजा है,
विश्व में किसी भी तीर्थ की यात्रा व्यर्थ है,

यदि बेटे के होते माँ–बाप असमर्थ हैं,
वो खुशनसीब हैं माँ–बाप जिनके साथ होते हैं,
क्योंकि माँ–बाप के आशिषों के हज़ारों हाथ होते हैं।

संजय पटेल के ब्लाग पर नितिन गामी नें ओम व्यास की अंतिम यात्रा के विषय में बताया है कि, "जगह जगह स्टेज बनाकर, लाउडस्पीकर लगाकर पूरे उज्जैन में ओम व्यास की पूर्व-रेकॉर्डेड रचनाओं का प्रसारण हो रहा था। बड़ी बात यह है कि ये काम न प्रशासन ने किया , न किसी नामचीन संस्था ने, आम दुकानदारों ने बाज़ार बंद रखकर ओम व्यास के लिये यह काव्यात्मक श्रद्धांजली देने का ग़ज़ब का कारनामा किया। एक कवि की ताकत आम आदमी होता है, जिसे वह न नाम से जानता है , न सूरत से ...लेकिन बस अपने प्यारे कवि से मोहब्बत करता है। आज उज्जैन की सड़कों पर बना ये मंच हमारे नगर को पहचान देने वाले पं.सूर्यनारायण व्यास,शिवमंगल सिंह सुमन और सिध्वेश्वर सेन की कड़ी में एक और नाम जोड़ गया....ओम व्यास "ओम"। ये पढ़कर कहीं न कहीं अश्रुपूरित नेत्रों को ऐसा लगा कि अभी भी हमारे देश में कवि और आम लोगों के बीच हृदय का एक सम्बन्ध जीवित है।

हिंदी साहित्य के लिए तथा कविता के मंचों के लिए यह एक कभी न पूरी होने वाली क्षति है। जून 2009 तो हमारे काव्य मंचों पर वज्रपात के माह के रूप में याद किया जाएगा। कहा जाता है कि कलाकार अपनी कला के माध्यम से सदा जीवित रहता है। ये रचनाकार तब तक अमर रहेंगे जब तक इनके शब्दों को सुनकर लोगों के चेहरों पर मुस्कुराहटें बनी रहेंगी। मैं अपनी, "हिंदी चेतना" परिवार की तथा संपूर्ण काव्य जगत की ओर से कलम के इन सिपाहियों के प्रति श्रद्धाँजलि अर्पित करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वे इनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ।।

फादर कामिल बुल्के

अमित कुमार सिंह (कैनेडा)

सादगी और ओज था
चेहरे पर उनके अदभुत तेज था
जन्म से थे वो एक परदेशी
पर हिन्दी और हिन्दोस्तानियत में
थे वो बिल्कुल देशी
सन्त और समाज सेवी
फादर कामिल बुल्के थे
एक सच्चे हिन्दी प्रेमी और सेवी !

सरहदें रोक न सकीं जिनको
भारत का प्यार
खींच लाया था उनको
एक ईसा का भक्त
बन गया था रामकथा का
अन्वेषक और
'तुलसी' का पुजारी !

पढ़ रामचरित मानस
हुये वो भाव विह्वल
लगा दिया उन्होंने
हिन्दी और राम में
अपने जीवन का
एक - एक पल !

हिन्दी की मृदुलता ने
मोह लिया जिस
फ्लेमिश का दिल
दिया उसने हिन्दी को
तोहफ़ा एक अनमोल
कहते हैं जिसे
अंग्रेजी - हिन्दी शब्दकोश !

ममता और दयालुता
से भरा विशाल हृदय था
सबकी मदद के लिये
हमेशा तत्पर रहने वाला
उनका 'अमित' व्यक्तित्व था !

हिन्दी भाषियों को
हिन्दी का सम्मान
करना सिखा गये,
सन्त महापुरुष 'कामिल बुल्के' जी
हम हिन्दुस्तानियों पर अपनी
एक अमिट पहचान छोड़ गये ।

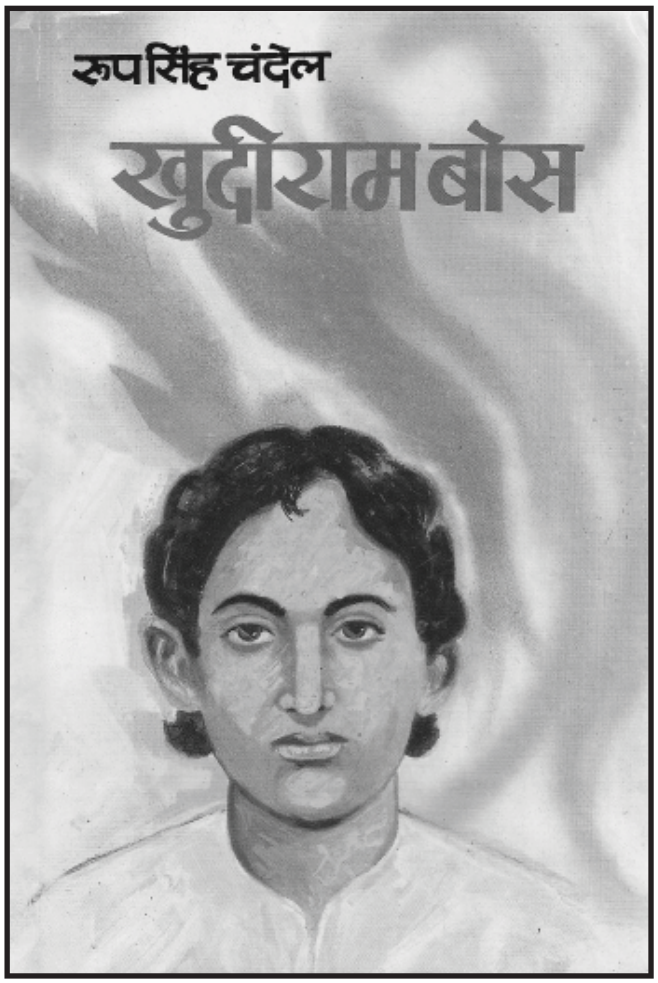

रूपसिंह चंदेल
खुदीराम बोस

एक शराबी की सूक्तियां
कृष्ण कल्पित

रूप सिंह चंदेल

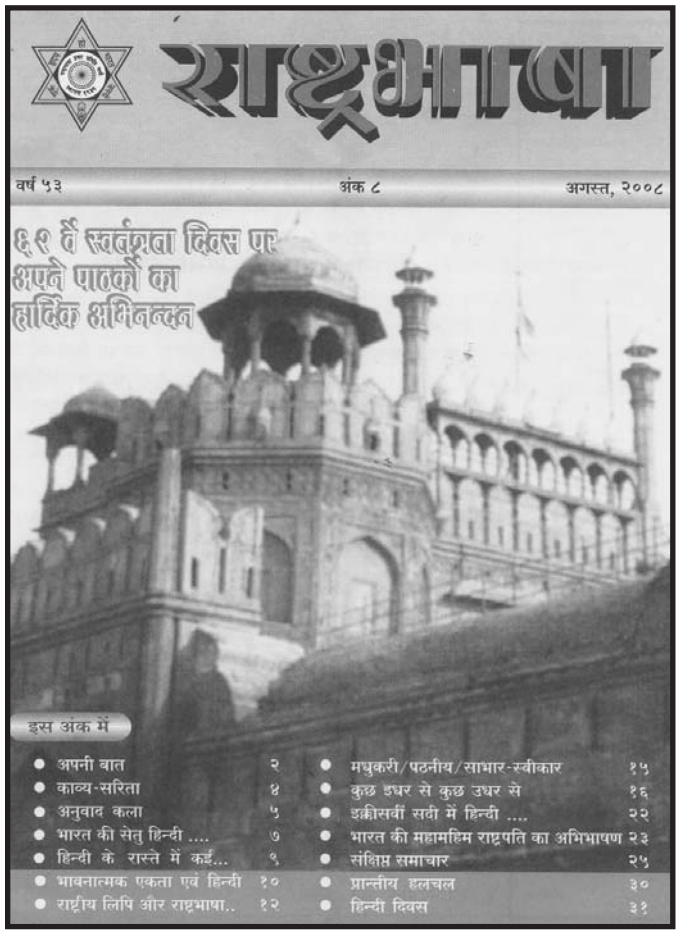

राष्ट्रभाषा
वर्ष ५३
अंक ८
अगस्त, २००८
६१ वें स्वतंत्रता दिवस पर
अपने पाठकों का
हार्दिक अभिनन्दन
इस अंक में
अपनी बात २
काव्य-सरिता ४
अनुवाद कला ५
भारत की सेतु हिन्दी ७
हिन्दी के रास्ते में कई... ९
भावनात्मक एकता एवं हिन्दी १०
राष्ट्रीय लिपि और राष्ट्रभाषा.. १२
मधुकरी/पठनीय/साभार-स्वीकार १५
कुछ इधर से कुछ उधर से १६
इक्कीसवीं सदी में हिन्दी २२
भारत की महामहिम राष्ट्रपति का अभिभाषण २३
संक्षिप्त समाचार २५
प्रान्तीय हलचल ३०
हिन्दी दिवस ३१

Hindi Pracharni Sabha

Membership Form

Annual Subscription:	**$25.00 Canadian**
Life Membership:	**$200.00 Canadian**
Donation:	**$ _____**
Method of Payment:	**Cash, cheques and drafts payable to "Prachani Sabha"**

Your Name:_____

Address: _____

_____

Telephone: Home: _____

Business: _____

e-mail: _____

_____

Contact in Canada:

Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham, Ontario L3R 3RI
Canada

e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:

Dr. Sudha Om Dingra
101 Guymon Court
Morrisville, North Carolina
NC27560, USA

e-mail: ceddlt@yahoo.com

CARPET PLUS

SAVE UP TO 70%
LUXURIOUS CARPETS
ORIENTAL RUGS

Commercial &
Residential
Installations

F R E E

- ***Installation***
- ***Underpad***
- ***Delivery***
- ***Shop at Home***

(416) 661-4444
(416) 663-2222

Vinyl Tiles

Broadloom

180 Winges Rd.,
Unit 17-19
Woodbridge, Ontario
L4L 6C6

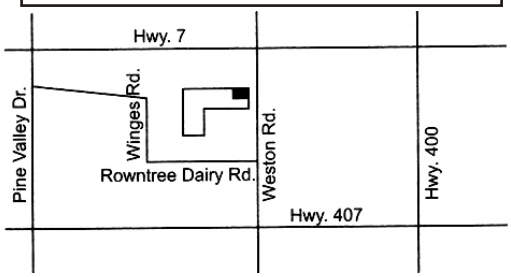

Finest Source of :

International Flag Pins

Campaign Buttons

Friendship Pins

Embroided Crests (Patches) of All Countries

International & Provincial Flags of all sizes, Souvenirs

Mini Banners & Keychains of all countries available

Custom work available for Pins, Buttons, Crests and Flags
At Factory Direct Prices Free Set up & Shipping

We carry more than 500 Titles each of Pins, Flags & Crests in stock

Pinsnflags.com Inc., 395 Spadina Ave., Toronto, Ont., M5T 2G6

Tel: 416-596-1574 Fax: 416-596-2248
Toll Free: 1-877-322-4771 E-Mail: veena@pinsnflags.com
www.pinsnflags.com

मेरे मित्रो! हिन्दी बोलो, अपने बच्चों को हिन्दी सिखाओ! अपनी भाषा और संस्कृति को बचाओ!1